प्राणायाम-साधना

स्वामी शिवानन्द

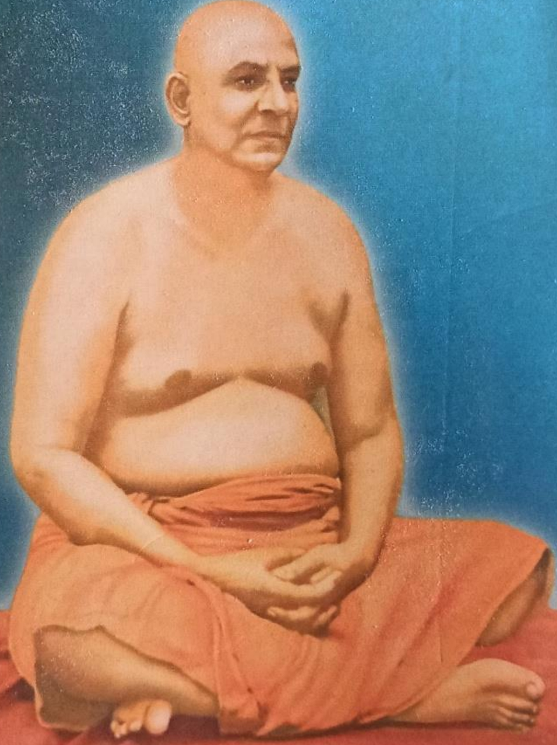

प्राणायाम-साधना

THE SCIENCE OF PRANAYAMA
का अविकल अनुवाद

लेखक
श्री स्वामी शिवानन्द

SERVE LOVE MEDITATE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY

अनुवादक
श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रथम हिन्दी संस्करण १९६१
सप्तम हिन्दी संस्करण :२०१९
(१,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

ISBN 81-7052-072-X
HS 122

PRICE: ₹75/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग- वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर – २४९१९२,
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय

इस पुस्तक के विषय अथवा इसके लेखक श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के गुणों पर बल देना हमारे लिए अनावश्यक ही है। श्री स्वामी जी इसके पहले से ही विश्व जनमानस में एक 'विश्वसनीय परित्राता' के रूप में निवास करते हैं। योग के ऐसे जटिल विषयों को प्रत्ययकारी आश्वासनों से युक्त अप्रतिम, सरल शैली में उपस्थापन

की स्वामी जी की रीति अनुपम तथा अद्वितीय है। यह इसलिए और भी अधिक प्रामाणिक है कि स्वामी जी एक अनुभवी चिकित्सक, एक पूर्ण विकसित योगी तथा एक जीवन्मुक्त के संयोग हैं।

सिद्धगुरु के सान्निध्य की अपरिहार्य आवश्यकता, आहार-सम्बन्धी प्रतिबन्ध और तथाविध सीमाबद्धता के कारण कुछ दिशाओं के लोगों में योगाभ्यास को आशंका की दृष्टि से देखा जाता है। स्वामी जी ने इसमें इस प्रकार की आशंकाओं की असंगतता को स्पष्ट शब्दों में समझाया है और इसके लिए बहुत ही सरल तथा निरापद विधि निर्धारित की है। इस पुस्तक में सभी प्रकार के साधकों के लिए उपयुक्त शिक्षाएँ हैं। जो इस पुस्तक के अन्तिम भाग में दिये हुए विशेष उपदेशों का पालन करेंगे, वे अपनी प्रत्याभूत सफलता तथा सुरक्षा के विषय में आश्वस्त रह सकते हैं।

प्राणायाम अष्टांगयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह सुस्वास्थ्य और प्रत्येक व्यवसाय में सफलता तथा उन्नति हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके दैनिक जीवन में समान रूप से आवश्यक है। यह क्योंकर है, इसका स्पष्टीकरण इन पृष्ठों में दिया गया है। शिथिलीकरण का विज्ञान सभी पाठकों के लिए एक महान् देन है। यह सबको लाभ पहुँचायेगा ।

हमारे प्रिय पाठकों ने इसके पूर्ववर्ती संस्करणों को जिस हार्दिकता से स्वीकार किया, उससे हमें बहुत ही प्रोत्साहन मिला है और हम आशा करते हैं कि अधिकाधिक संख्या में साधक अपनी दैनिक आध्यात्मिक साधनाओं में साधना के इस महत्त्वपूर्ण पहलू को अपनायेंगे तथा सुख और आनन्द का स्वयं अनुभव करेंगे, जो स्वभावतः ही उन्हें आनन्दमय 'दिव्य जीवन' की दिशा में ले जायेगा।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

प्रस्तावना

आजकल शीघ्र यात्रा करने के लिए तीव्रगामी रेलगाड़ी, स्टीमर, वायुयान आदि की सुविधाएँ इस भौतिक जगत् में हमें प्राप्त हैं; परन्तु योगियों का दावा है कि योगाभ्यास के द्वारा शरीर के भार को इतना कम किया जा सकता है कि वह पल मात्र में आकाश मार्ग से कहीं भी, कितनी भी दूरी पर जा सके। योगी चमत्कारी मलहम तैयार कर सकते हैं, जिसे पैर के तलवे में लगा कर वे अल्प समय में ही इस पृथ्वी पर कहीं भी जा सकते हैं। खेचरी मुद्रा के अभ्यास से दीर्घित जिह्वा को अन्दर की ओर मोड़ कर, उससे पश्च नासाद्वार को बन्द कर योगी वायु में उड़ सकते हैं। वे अपने मुख में किसी चमत्कारी गोली को रख कर पल मात्र में ही आकाश मार्ग से जहाँ चाहे वहाँ जा सकते हैं। सुदूर स्थलों अथवा विदेशों में रहने वाले अपने सम्बन्धियों का कुशल-क्षेम जानने के लिए चिन्तित होने पर हम पत्र लिखते हैं अथवा साधारण या अविलम्ब्य तार भेजने का आश्रय लेते हैं; परन्तु योगियों का दावा है कि वे संसार के किसी भी भाग की घटनाओं को अपने मनःप्रक्षेपण के द्वारा अथवा कुछ क्षणों के मानसिक भ्रमण द्वारा

जान सकते हैं। योगी लाहिड़ी, जिनकी समाधि वाराणसी में वर्तमान है, ने अपने किसी वरिष्ठ अधिकारी की पत्नी के स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए लन्दन की यात्रा की थी। किसी दूर स्थित मित्र से बातें करने के लिए इस भौतिक जगत् में दूरभाष, बेतार का तार आदि साधन हैं; परन्तु योगी-जन अपनी यौगिक शक्ति से किसी भी बात को कितनी ही दूर से सुन सकते हैं। वे ईश्वरीय वाणी तथा आकाश में वर्तमान अदृश्य देवताओं की वाणी को भी सुन सकते हैं। आज जब कोई व्यक्ति रोगग्रस्त होता है, तो इस भौतिक जगत् में उसके लिए चिकित्सक, औषधि, अन्तःक्षेप (इंजेक्शन) आदि की व्यवस्था है; परन्तु योगियों का कहना कि वे दृष्टि अथवा स्पर्श मात्र से अथवा मन्त्रों के जप मात्र से रोगी का उपचार कर सकते हैं। इतना ही नहीं, वे मृतकों को भी जीवित कर सकते हैं।

ये योगी धारणा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा विभिन्न यौगिक शक्तियाँ, जिन्हें सिद्धियाँ कहते हैं, प्राप्त कर लेते हैं। जिनके पास सिद्धियाँ होती हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं। जिस प्रक्रिया से वे सिद्धि प्राप्त करते हैं, उसे साधन कहते हैं। प्राणायाम इन साधनों में से एक प्रमुख साधन है। आसनों के अभ्यास से आप स्थूल शरीर को वश में कर सकते हैं तथा प्राणायाम के अभ्यास से आप सूक्ष्म शरीर अथवा लिंग शरीर को वशीभूत कर सकते हैं। श्वास तथा प्राणिक नाड़ियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतः श्वास के नियन्त्रण से प्राणिक प्रवाहों पर भी नियन्त्रण हो जाता है।

भारतीय धर्म में प्राणायाम का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक ब्रह्मचारी तथा प्रत्येक गृहस्थ को अपनी दैनिक पूजा के समय तीन बार—प्रातः, दोपहर तथा सायं को-प्राणायाम का अभ्यास करना पड़ता है। हिन्दुओं का प्रत्येक धार्मिक कार्य इससे प्रारम्भ होता है। खाने से पहले, पीने से पहले, किसी कार्य को करने का संकल्प करने से पहले प्राणायाम कर लेना चाहिए और तब अपने निश्चय को स्पष्ट रूप से निरूपित करना और उसे मन के समक्ष रखना चाहिए। प्रत्येक संकल्प के प्रयास से पूर्व प्राणायाम करने में यह बात असन्दिग्ध है कि प्रयास फलीभूत होगा तथा मन अभीप्सित परिणाम पूरा करने की दिशा में निर्देशित होगा। यहाँ स्मरण-शक्ति के असाधारण कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है, जिसका अभ्यास हिन्दू योगी शतावधान के नाम से करते हैं। इसमें शतावधानी से त्वरित क्रम में विभिन्न व्यक्ति १०० भिन्न-भिन्न प्रश्न करते हैं, जिनमें से कुछ उसकी शाब्दिक स्मरण शक्ति की, कुछ उसकी मानसिक गणना-शक्ति की और कुछ उसकी कलात्मक निपुणता को जाँचने के लिए होते हैं। किये गये प्रश्नों को स्मरण करने के लिए उसे कुछ भी समय नहीं दिया जाता है। शतावधानी उन प्रश्नों को उनके किसी भी क्रम में एक-एक कर दोहराता है तथा उनका उत्तर देता जाता है। इसे वह साधारणतया तीन या उससे अधिक बारियों में करता है। प्रत्येक बारी में प्रत्येक प्रश्न के एक अंश का ही उत्तर देता है तथा दूसरी बारी में जहाँ प्रथम बार उत्तर छोड़ा था, वहीं से उसे पुनः आरम्भ कर देता है। यदि प्रश्न गणितीय निर्मेय हुए, जिनका हल अपेक्षित है, तो वह उन्हें मन में हल कर प्रश्न के साथ उत्तर दे देता है।

मन की एकाग्रता की यह क्षमता प्रायः बुद्धि के विषय में ही नहीं, अपितु पंचेन्द्रियों के विषय में भी प्रदर्शित की जाती है। कई घण्टियों में भिन्न-भिन्न चिह्न अंकित कर देते हैं और उनके चिह्नों के साथ उनकी ध्वनियों का अध्ययन करने तथा उन पर मानसिक रूप से ध्यान देने दिया जाता है। एक ही रंग तथा आकार के अनेक पदार्थों, जो सामान्य व्यक्ति के नेत्रों को धोखे में डाल सकते हैं, को अवधानी को उनकी अंकित संख्या के साथ एक बार दिखला दिया जाता है। जब वह किसी अन्य काम में निरत हो, तो यदि एक घण्टी बजा दी जाये अथवा उन पदार्थों में से एक पदार्थ उसके नेत्रों के समक्ष प्रदर्शित कर दिया जाये, तो वह तत्काल उस घण्टी का चिह्न अथवा प्रदर्शित पदार्थ की संख्या बतला देता है। इसी भाँति उसकी स्पर्शेन्द्रिय की कुशाग्रता की भी परीक्षा की जाती है। स्मरण-शक्ति के ऐसे असाधारण कार्य प्राणायाम के दैनिक अभ्यास से प्राप्त प्रशिक्षण से ही सम्भव होते हैं।

प्राण की व्याख्या प्रत्येक वस्तु में विद्यमान उस सूक्ष्मतम प्राणिक बल के रूप में की जा सकती है जो भौतिक जगत् में गति तथा क्रिया के रूप में तथा मानसिक जगत् में विचार के रूप में व्यक्त होता है। अतः प्राणायाम शब्द का अर्थ है—प्राणिक ऊर्जाओं का नियन्त्रण। यह उस प्राणिक ऊर्जा का नियन्त्रण है जो लोगों की स्नायुओं में सनसनाती, उसकी मांसपेशियों का संचालन करती तथा उसके बाह्य जगत् का अनुभव करने और

आन्तरिक विचारों को सोचने का कारण बनती है। इस ऊर्जा का स्वरूप ऐसा है कि इसे प्राणी-शरीर रचना की गतिज ऊर्जा कहा जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा इस ऊर्जा पर नियन्त्रण पाना ही योगियों का लक्ष्य है। जो व्यक्ति प्राण पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह शारीरिक तथा मानसिक जगत् में अपने अस्तित्व का ही नहीं, वरन् समस्त संसार का विजेता हो जाता है; क्योंकि प्राण ही विश्वात्म-जीवन का सारतत्त्व है, वह सूक्ष्म तत्त्व है जिससे इस समस्त जगत् का इस वर्तमान रूप में उद्विकास हुआ और जो उसे उसके चरम लक्ष्य की दिशा में आगे धकेल रहा है। योगी के लिए समस्त ब्रह्माण्ड उसका शरीर है। उसके शरीर को संघटित करने वाला तत्त्व वही है, जिससे इस ब्रह्माण्ड का उद्विकास हुआ। उसकी स्नायुओं में जो शक्ति स्पन्दित होती है, वह उस शक्ति से भिन्न नहीं है जो ब्रह्माण्ड में दोलायमान है। अतः योगी के लिए शरीर पर विजय का अर्थ है—प्रकृति की शक्तियों पर विजय। हिन्दू-दर्शन के अनुसार यह सारी प्रकृति दो मुख्य द्रव्यों से संघटित है। उनमें से एक को आकाश की संज्ञा दी जाती है और दूसरे को प्राण की। इन दोनों को आधुनिक वैज्ञानिकों के द्रव्य तथा शक्ति के अनुरूप कहा जा सकता है। इस विश्व की प्रत्येक वस्तु, जिसका कोई रूप अथवा आकार है अथवा जिसकी भौतिक सत्ता है, इस विभु तथा सर्वव्यापक सूक्ष्म द्रव्य 'आकाश' से उत्पन्न हुई है। गैस (वाति) तरल तथा सान्द्र, हमारे सौर-मण्डल तथा हमारे सौर मण्डल की भाँति लाखों विशाल मण्डलों से निर्मित यह ब्रह्माण्ड तथा वास्तव में 'सृष्टि' शब्द के अन्तर्गत आने वाला प्रत्येक प्रकार का अस्तित्व इस एक सूक्ष्म तथा अदृश्य आकाश की उपज है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त में वे उस प्रारम्भ-बिन्दु को वापस चले जाते हैं। इसी भाँति मनुष्य को ज्ञात प्रकृति की सभी प्रकार की शक्तियाँ, गुरुत्वाकर्षण, प्रकाश, ताप, विद्युत्, चुम्बकत्व; 'शक्ति' के व्यापक नाम के अन्तर्गत समूहित होने वाली सभी शक्तियाँ, भौतिक सृष्टि, स्नायविक प्रवाह, जान्तव शक्ति के नाम से ज्ञात सभी शक्तियाँ, विचार तथा अन्य बौद्धिक शक्तियाँ भी विश्वात्म-प्राण की अभिव्यक्तियाँ कही जा सकती हैं। ये प्राण से ही सत्ता-रूप में प्रकट होती हैं और अन्त में प्राण में ही विलीन हो जाती हैं। इस विश्व की प्रत्येक प्रकार की —— शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति इस आद्य शक्ति में ही विघटित हो जाती है। अपने किसी-न-किसी रूप में इन दो तत्त्वों के अतिरिक्त कोई भी नवीन पदार्थ नहीं हो सकता। पदार्थ का संरक्षण तथा शक्ति का संरक्षण—ये प्रकृति के दो मौलिक नियम हैं। एक यह सिखलाता है कि विश्व का निर्माण करने वाले आकाश का कुल योग स्थिर है, तो दूसरा सिखलाता है कि विश्व को स्पन्दित करने वाली शक्ति का कुल योग भी स्थिर-परिमाण का है। प्रत्येक कल्प के अन्त में शक्ति के विभिन्न रूप शान्त हो कर प्रच्छन्न हो जाते हैं। इसी भाँति आकाश भी अव्यक्त हो जाता है; किन्तु आगामी कल्प के प्रारम्भ में शक्तियाँ पुनः प्रकट होती हैं। तथा विविध रूपों के उद्विकास के लिए आकाश को प्रभावित करती हैं। आकाश में जब स्थूल अथवा सूक्ष्म विकार होते हैं, तो प्राण में भी तदनुसार स्थूल अथवा सूक्ष्म विकार होते हैं। योगी के लिए मानव शरीर लघु-ब्रह्माण्ड है। उसके लिए उसके शरीर की स्नायु प्रणाली तथा ज्ञानेन्द्रियाँ आकाश के तथा स्नायु प्रवाह और विचार प्रवाह विश्वात्म-प्राण के द्योतक हैं। अतएव उनकी कार्य-प्रणाली के रहस्य को समझना तथा उनको नियन्त्रित करना ही परम ज्ञान तथा विश्व पर विजय प्राप्त करना है।

जिसने इस प्राण को पूर्ण रूप से समझ लिया है, उसने विश्वात्म-जीवन और उसके कार्य-कलाप के हार्द को समझ लिया है। जिसने इस सार-तत्त्व पर विजय तथा नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है, उसने न केवल अपने शरीर तथा मन पर, अपितु इस संसार के प्रत्येक शरीर तथा मन पर अधिकार कर लिया है। इस प्रकार प्राणायाम वह साधना है जिससे योगी अपने लघु-शरीर में सम्पूर्ण विश्वात्म-जीवन का साक्षात्कार करने के लिए प्रयत्नशील बनता है तथा विश्व की समस्त शक्तियों को उपलब्ध कर पूर्णता प्राप्ति का प्रयास करता है। उसकी विविध साधनाएँ तथा प्रशिक्षण इस एक लक्ष्य के लिए ही होते हैं।

विलम्ब क्यों करते हैं? विलम्ब करने का अर्थ है—और अधिक दुःखों तथा क्लेशों को भोगना । गति बढ़ायें, काल-रूपी विशाल खाई को पार करने में सफल होने तक कठोर सघर्ष करें। समुचित साधना द्वारा तत्काल, इस शरीर में अभी, इसी क्षण लक्ष्य को प्राप्त करें। हम उस अनन्त ज्ञान, असीम आनन्द, अपरिमित शान्ति तथा अपरिमेय शक्ति को अभी ही क्यों न प्राप्त करें!

इस समस्या का समाधान योग की शिक्षा है। सम्पूर्ण योग-विज्ञान का यह एक दृष्टिकोण है—मनुष्य को संसार-सागर के सन्तरण, शक्ति-संवर्धन, ज्ञान-विकास तथा अमरत्व और नित्यानन्द की प्राप्ति में सक्षम बनाना।

विषय-सूची

प्रकाशकीय 2

प्रस्तावना 3

प्रथम अध्याय 11

१. प्राण तथा प्राणायाम 11

२. प्राण क्या है ? 11

३. प्राण का स्थान 13

४. उप-प्राण तथा उसके कार्य 13

५. प्राणों का वर्ण 13

६. श्वास- वायु की लम्बाई 14

७. प्राण का केन्द्रीकरण 14

८. फेफड़े 14

९. इडा तथा पिंगला 16

१०. सुषुम्ना 17

११. कुण्डलिनी 18

१२. षट्-चक्र 18

१३. नाड़ियाँ 19

१४. नाड़ी-शुद्धि 19

१५. षट्कर्म 20

१६. धौति 20

१७. वस्ति 20

१८. नेति 21

१९. त्राटक 21

२०. नौलि 21

२१. कपालभाति 21

द्वितीय अध्याय 22

१. ध्यान- गृह 22

२. पंच- आवश्यकीय 22

३. स्थान 23

४. समय 23

५. अधिकारी 23

६. आहार-संयम 24

७. यौगिक आहार 25

८. मिताहार 25

९. भोजन में शुद्धता 25

१०. चरु 25

११. दुग्धाहार 26

१२. फलाहार 26

१३. अनुमत खाद्य पदार्थ 26

१४. निषिद्ध आहार 26

१५. साधना के लिए कुटीर 27
१६. मात्रा 27
१७. पद्मासन 27
१८. सिद्धासन 28
१९. स्वस्तिकासन 29
२०. समासन 30
२१. बन्ध-त्रय 30
२२. आरम्भ-अवस्था 31
२३. घट-अवस्था 31
२४. परिचय - अवस्था 32
२५. निष्पत्ति-अवस्था 32
तृतीय अध्याय 33
१. प्राणायाम क्या है ? 33
२. प्राणायाम 33
३. प्राणायाम 33
४. प्राणायाम 34
५. श्वास- नियन्त्रण 35
६. प्राणायाम के प्रकार 36
७. तीन प्रकार के प्राणायाम 38
८. वेदान्तिक कुम्भक 39
९. नाडीशोधन प्राणायाम 39
१०. प्राणायाम-काल में मन्त्र 39
११. अभ्यास (१) 40
१२. अभ्यास (२) 40
१३. अभ्यास (३) 40
१४. अभ्यास (४) 41
१५. गहरी श्वास का अभ्यास 41
१६. कपालभाति 42
१७. बाह्य कुम्भक 43
१८. सुखपूर्वक प्राणायाम 43
१९. कुण्डलिनी जागरण के लिए प्राणायाम 43
२०. ध्यान के समय प्राणायाम 44
२१. टहलते समय प्राणायाम 44
२२. शवासन में प्राणायाम 45

२३. तालबद्ध प्राणायाम 45
२४. सूर्यभेद 46
२५. उज्जाई 46
२६. शीतकारी 47
२७. शीतली 48
२८. भस्त्रिका 48
२९. भ्रामरी 49
३०. मूर्च्छा 50
३१. प्लावनी 50
३२. केवल-कुम्भक 50
३३. प्राण - चिकित्सा 50
३४. दूरस्थ उपचार 51
३५. शिथिलीकरण 52
३६. मन का शिथिलन 52
३७. प्राणायाम का महत्त्व तथा लाभ 52
३८. विशेष उपदेश 54
परिशिष्ट 60
१. मणिपूरक चक्र पर धारणा 60
२. पंच-धारणा 61
(क) पृथ्वी धारणा 61
(ख) अम्भासी धारणा 61
(ग) आग्नेयी धारणा 61
(घ) वायव्य-धारणा 62
(ङ) आकाश धारणा 62
३. योगी भुशुण्ड की कहानी 62
४. आन्तरिक उद्योगशाला 62
५. यौगिक आहार 63
६. शिवानन्द का प्राणायाम 69
७. कुण्डलिनी - प्राणायाम 69
८. प्रश्नोत्तर 70

प्राणायाम-साधना

प्रथम अध्याय

१. प्राण तथा प्राणायाम

प्राणायाम वास्तविक विज्ञान है। यह अष्टांगयोग का चतुर्थ अंग है। पातंजलयोग के द्वितीय अध्याय के ४९ वें सूत्र में प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार की गयी है : **"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः "** आसन के स्थिर होने पर श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम है।

श्वास का अर्थ है- नासिका से वायु भीतर खींचना तथा प्रश्वास का अर्थ है - वायु को बाहर छोड़ना । श्वास प्राण की बाह्य अभिव्यक्ति है। श्वास विद्युत् की भाँति ही स्थूल प्राण है। श्वास स्थूल है। प्राण सूक्ष्म है। श्वास पर नियन्त्रण के द्वारा आप आन्तरिक सूक्ष्म प्राण पर नियन्त्रण कर सकते हैं। प्राण को वश में करने का अर्थ है—मन को वश में करना। प्राण की सहायता के बिना मन काम नहीं कर सकता। प्राण के ही स्पन्दन मन में विचार उत्पन्न करते हैं। प्राण ही मन को गतिशील करता है। प्राण ही मन को चलायमान करता है। सूक्ष्म प्राण का मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। प्राण मन का ओवरकोट है। श्वास यन्त्र के महत्त्वपूर्ण गति - पालक-चक्र का प्रतीक है। जैसे यन्त्र - चालक जब गति पालक चक्र को रोक देता है तो दूसरे चक्र रुक जाते हैं, वैसे ही जब योगी श्वास को रोक देता है तो अन्य अंग कार्य करना बन्द कर देते हैं। यदि आप गति पालक-चक्र पर नियन्त्रण कर सकते - हैं, तो आप अन्य चक्रों पर सहज ही नियन्त्रण कर सकते हैं। इसी भाँति यदि आप बाह्य श्वास पर नियन्त्रण कर सकते हैं, तो प्राण पर सहज ही नियन्त्रण कर सकते हैं। बाह्य श्वास के नियमन द्वारा प्राण को वश में करने की जो प्रक्रिया है, उसे ही प्राणायाम कहते हैं।

जिस भाँति स्वर्णकार स्वर्ण को गरम भट्टी में तपा कर, धौंकनी को जोरों से धौंक कर उसके मल को दूर करता है, उसी भाँति योग का साधक अपने फुप्फुसों को धौंक कर अर्थात् प्राणायाम के व्यवहार द्वारा अपने शरीर तथा इन्द्रियों की मलिनताओं का निवारण करता है।

प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है प्राण तथा अपान को संयुक्त करना तथा इस संयुक्त प्राण-अपान को शनैः-शनैः शिर की ओर ले जाना । प्राणायाम का फल है उद्घाटन अथवा प्रसुप्त कुण्डलिनी का जागरण ।

२. प्राण क्या है ?

"जो प्राण को जानता है, वह वेदों को जानता है", श्रुतियों की यह घोषणा है। आप वेदान्त-सूत्र में पायेंगे - "इसी कारण से प्राण ब्रह्म है। " प्राण विश्व में अभिव्यक्त सभी शक्तियों का कुल योग है। यह प्रकृति की सारी शक्तियों का कुल योग है। यह मनुष्य में प्रच्छन्न तथा हमारे चतुर्दिक् सर्वत्र स्थित सभी शक्तियों का कुल योग है। ताप, प्रकाश, विद्युत्, चुम्बकत्व - ये सभी प्राण की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। सारी शक्तियाँ, सारे बल तथा यह प्राण एक ही स्रोत 'आत्मा' से उद्भूत है। सारी भौतिक शक्तियाँ, सारी मानसिक शक्तियाँ प्राण की श्रेणी में आती हैं। यह वह शक्ति है जो हमारी सत्ता के उच्चतम से निम्नतम तक प्रत्येक तल में विद्यमान है। जो कुछ भी गतिशील अथवा कार्यशील है अथवा जिसमें जीवन है, वह इसी प्राण की ही अभिव्यक्ति अथवा प्रकटीकरण है। आकाश भी प्राण की ही अभिव्यक्ति है। प्राण का सम्बन्ध मन से तथा मन के द्वारा संकल्प शक्ति से और संकल्प-शक्ति के द्वारा आत्मा से तथा आत्मा के द्वारा परमात्मा से है। यदि आप मन से हो कर कार्य करने वाली प्राण की लघु लहरियों को दमन करना जान लें, तो आपको वैश्व प्राण को वश में करने का रहस्य मालूम हो जायेगा। इस रहस्य को जानने वाले योगी को किसी भी शक्ति से भय नहीं होता; क्योंकि वह विश्व में शक्ति की सभी अभिव्यक्तियों पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। साधारणतः जिसे व्यक्तित्व की शक्ति कहते हैं, वह उस व्यक्ति में प्राण पर शासन करने की स्वाभाविक क्षमता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। कुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा जीवन में अधिक सफल, अधिक प्रभावशाली तथा अधिक आकर्षक होते हैं। यह इस प्राण की शक्ति के कारण ही है। ऐसे लोग अनजानते ही प्रतिदिन उस प्रभाव से कार्य लेते हैं जिसे योगी जन जानते हुए अपनी संकल्प-शक्ति के द्वारा प्रयोग करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो संयोगवश इस प्राण को अनजानते ही कुछ अंश में प्राप्त कर लेते हैं तथा मिथ्या नाम से इसे

निम्न उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना लेते हैं। हृदय के प्रकुंचन तथा प्रसारण, धमनियों में रुधिर का संचरण, श्वास-प्रश्वास की क्रिया, भोजन के पाचन, मलमूत्र निष्कासन, वीर्य, वसा-लसीका, अम्लान्न, आमाशय रस, पित्त, पक्वाशय-रस, लार के निर्माण, आँखों की पलकों का गिरना तथा उठना, टहलना, खेलना, दौड़ना, बोलना, सोचना, तर्क करना, अनुभव करना, संकल्प करना — इन सबमें प्राण के ही कार्यों के दर्शन होते हैं। प्राण ही सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। जब सूत्रवत् सूक्ष्म प्राण को काट दिया जाता है, तब सूक्ष्म शरीर इस भौतिक शरीर से अलग हो जाता है। मृत्यु आ धमकती है। जो प्राण भौतिक शरीर में कार्य कर रहा था, वह सिमट कर सूक्ष्म शरीर में आ जाता है।

यह प्राण महाप्रलय के समय सूक्ष्म, स्थिर, अव्यक्त तथा अभिन्न अवस्था में रहता है। जब स्पन्दन प्रारम्भ होता है, तब प्राण गतिशील हो कर आकाश पर प्रभाव डालता है और विभिन्न रूपों का निर्माण करता है। ये ब्रह्माण्ड तथा पिण्डाण्ड इसी प्राण (ऊर्जा) तथा आकाश (द्रव्य) के संयोग से बने हैं।

जो ट्रेन तथा स्टीमर के यन्त्रों को गतिशील करता है, जो वायुयान को आकाश में संचालित करता है, जो फेफड़ों में श्वास का संचार करता है, जो इस श्वास का भी जीवन है, वह यह प्राण ही है। मैं समझता हूँ कि आपको प्राण के विषय में व्यापक ज्ञान प्राप्त हो गया होगा। प्रारम्भ में आप इस प्राण के विषय में बहुत ही अस्पष्ट ज्ञान रखते थे।

श्वास- क्रिया को वश में ला कर आप शरीर की विभिन्न गतियों तथा शरीर में प्रवाहित होने वाले विभिन्न स्नायु प्रवाहों पर कुशलतापूर्वक विजय प्राप्त कर सकते हैं। आप प्राणायाम के द्वारा शरीर, मन तथा आत्मा पर शीघ्र तथा सहज निग्रह स्थापित कर उनको विकसित कर सकते हैं। प्राणायाम के द्वारा आप अपनी परिस्थितियों तथा चरित्र पर नियन्त्रण ला कर व्यष्टि जीवन का समष्टि जीवन के साथ ज्ञानपूर्वक मेल साध सकते हैं।

संकल्प शक्ति से नियन्त्रित विचार के द्वारा संचालित श्वास वह - प्राणप्रद, नवजीवनदायिनी शक्ति है जिसे आप आत्म-विकास के लिए लगा सकते हैं। अपने शरीर की असाध्य बीमारियों को भी उसके उपयोग से दूर कर सकते हैं। दूसरों के रोगों का भी निदान कर सकते हैं तथा अन्य विविध उपयोगी कार्यों में उस शक्ति को लगा सकते हैं।

आप जीवन के प्रत्येक क्षण में सुगमतया इसे प्राप्त कर सकते हैं। यह आपकी पहुँच के अन्दर है। इसका बुद्धिमानीपूर्वक उपयोग कीजिए। प्राचीन काल में श्री ज्ञानदेव, त्रिलिंग स्वामी, बडालूर के रामलिंग स्वामी तथा अन्य योगियों ने इस प्राण-शक्ति को विभिन्न रूप से सदुपयोग में लाया था। यदि आप निर्धारित श्वास- व्यायाम के द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करें, तो आप भी वैसा ही कर सकते हैं। आप वायु नहीं, वरन् प्राण को ही श्वास द्वारा खींच रहे हैं। स्थिर एवं एकाग्र मन से धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक श्वास लीजिए। जितनी देर आसानी से हो सके, उसको रोके रखिए। तब धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिए। प्राणायाम की किसी भी अवस्था में जरा भी तनाव अथवा श्रम नहीं होना चाहिए। श्वास में जो सूक्ष्म शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं, उनको प्राप्त कीजिए। योगी बनिए तथा आनन्द, ज्योति एवं शक्ति को अपने चतुर्दिक् विकीर्ण कीजिए ।

प्राणवादियों की मान्यता है कि प्राण तत्त्व मनस्तत्त्व से भी बड़ा है। उनका कहना है कि सुषुप्ति में जब मन नहीं रहता, तब भी प्राण रहता है। अतः प्राण का महत्त्व मन से भी अधिक है। यदि आप कौषीतकी तथा छान्दोग्य उपनिषद् के दृष्टान्तों को पढ़ेंगे, जहाँ इन्द्रिय, मन तथा प्राण आपस में अपना बड़प्पन सिद्ध करने के लिए झगड़ते हैं, तो आपको प्राण की सर्वश्रेष्ठता मालूम होगी। प्राण ही श्रेष्ठ है; क्योंकि यह गर्भावस्था से ही शिशु में काम करना प्रारम्भ कर देता है। उसके विपरीत श्रोत्र आदि इन्द्रिय बाद में जब उनके स्थानों का (कान इत्यादि का) निर्माण हो जाता है, तब कार्य करने लगते हैं। प्राण को उपनिषदों में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ कहा गया है। सूक्ष्म प्राण के स्पन्दन से ही

मन, संकल्प आदि का अस्तित्व टिका हुआ है तथा वृत्तियों एवं विचारों का निर्माण होता है। आप देखते हैं, सुनते हैं, सोचते हैं, अनुभव करते हैं, संकल्प करते हैं, जानते हैं आदि। यह सब प्राण की सहायता से ही सम्भव है। अतः श्रुति कहती है- "प्राण ही ब्रह्म है।"

३. प्राण का स्थान

प्राण का स्थान हृदय है। यद्यपि अन्तःकरण एक ही है, फिर भी उसके चार रूप हैं : (१) मन, (२) बुद्धि, (३) चित्त तथा (४) अहंकार। उसी तरह प्राण भी एक ही है; परन्तु कार्य के अनुसार इसके पाँच रूप हैं : (१) प्राण, (२) अपान, (३) समान, (४) उदान तथा (५) व्यान। इसे वृत्ति-भेद कहते हैं। प्रधान प्राण मुख्य प्राण कहलाता है। अहंकार के साथ युक्त प्राण हृदय में निवास करता है। इन पाँचों में प्राण तथा अपान ही महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

प्राण का स्थान हृदय है, अपान का स्थान गुदा है, समान का स्थान नाभि है, उदान का कण्ठ है तथा व्यान सारे शरीर में व्याप्त है।

४. उप-प्राण तथा उसके कार्य

नाग, कूर्म, कुकर, देवदत्त तथा धनंजय —ये पाँच उप-प्राण हैं। प्राण का कार्य है श्वास-क्रिया, अपान का कार्य है मल निष्कासन, समान का कार्य है पाचन, तथा उदान का कार्य है भोजन निगलना। उदान जीव को सुषुप्ति-अवस्था में ले जाता है। यह मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग करता है। व्यान रुधिर-संचार करता

नाग से डकार तथा खाँसी आती है। कूर्म आँखें खोलने का कार्य करता है। कृकर के द्वारा भूख-प्यास लगती है। देवदत्त जम्हाई लेने का कार्य करता है। धनंजय मृत्यु के उपरान्त शरीर को विघटित करता है। जिस मनुष्य का प्राण ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर शिर से हो कर बाहर निकलता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता।

५. प्राणों का वर्ण

प्राण रक्त, लाल मणि अथवा प्रवाल के वर्ण का होता है। अपान मध्य में है और उसका रंग इन्द्रगोप के समान है। समान का रंग प्राण तथा अपान—दोनों के बीच का है। यह रंग शुद्ध दूध या स्फटिक के समान धवल और स्नेहयुक्त एवं चमकीले रंग के बीच का है। उदान का रंग धूमिल धवल तथा व्यान का ज्योति-किरण के समान है।

६. श्वास- वायु की लम्बाई

इस वायु शरीर का परिमाण ९६ अंगुल (६ फीट) है। श्वास छोड़ते समय उसकी साधारण लम्बाई १२ अंगुल (९ इंच) की, गाते समय लम्बाई १६ अंगुल (१ फुट) की, खाते समय वह २० अंगुल (१५ इंच) की, सोते समय ३० अंगुल (२२.५ इंच) की तथा मैथुन के समय ३६ अंगुल (२७ इंच) की होती है। शारीरिक व्यायाम के समय उससे

भी बहुत अधिक की हो जाती है। प्रश्वास के वायु प्रवाह की लम्बाई को ९ इंच से भी कम करने से आयु की वृद्धि होती है तथा इसकी लम्बाई की वृद्धि होने से आयु घटती है।

७. प्राण का केन्द्रीकरण

बाहर से प्राण को नासिका द्वारा खींच कर तथा उससे पेट को भरते हुए प्राण तथा उसके साथ मन को नाभि के मध्य में, नासिका के अग्र भाग में तथा पैर की उँगलियों में सन्ध्या के समय अथवा सर्वदा केन्द्रित किये रखिए। इससे योगी सभी रोगों तथा थकावटों से मुक्त हो जाता है। प्राण को नासिकाग्र पर केन्द्रित करने से वह वायु तत्त्व पर विजय पा लेता है, नाभि के मध्य में केन्द्रित करने से सारे रोग नष्ट हो जाते हैं और पादांगुलियों पर केन्द्रित करने से शरीर हलका बन जाता है। जो जिह्वा से वायु पीता है, वह थकावट, प्यास तथा अन्य बहुत-सी व्याधियों को दूर कर पाता है। जो दोनों सन्ध्याओं के समय तथा रात्रि के पिछले दो घण्टे मुँह से वायु पीता है, तीन महीने के अन्दर उसके वाक् में सरस्वती विराजती हैं तथा वह विद्वान् तथा सुवक्ता बन जाता है। छह महीने में वह सारे रोगों से मुक्त हो जाता है। जिह्वा मूल से वायु-पान करते हुए ज्ञानी मनुष्य अमृत पान के द्वारा सारे ऐश्वर्यों का उपभोग करता है।

८. फेफड़े

यहाँ फेफड़ों तथा उनके काम के विषय में कुछ शब्द लिखना असंगत न होगा। श्वास-प्रणाली में छाती की दायीं तथा बायीं ओर दो फेफड़े तथा उन तक जाने वाली वायु-नलिकाएँ हैं। ये दोनों फेफड़े छाती के ऊपरी वक्ष रन्ध्र में स्थित हैं। वे मध्यम रेखा के दोनों ओर हैं, एक दायी ओर तथा दूसरा बायीं ओर। दोनों फेफड़े हृदय, बड़ी शिराओं तथा वायु नलिकाओं द्वारा एक-दूसरे से अलग हैं। फेफड़े स्पंज की भाँति छिद्रमय हैं तथा उनके ऊतक बहुत ही लचकीले हैं। फेफड़े में अनेकानेक वायु-कोष हैं जो वायु से भरे रहते हैं। शव परीक्षा के अनन्तर फेफड़ों को जब जल-पात्र में रखा जाता है, तो वे तैरने लगते हैं। ये फेफड़े एक कोमल लसी-कला से आवृत हैं जिसे फुप्फुसावरण कहते हैं। इस फुप्फुसावरण के भीतर एक प्रकार का लसी-द्रव रहता है। जो फेफड़ों की श्वास-क्रिया के समय घर्षण से रक्षा करता है। फुप्फुसावरण का एक भाग फेफड़े और दूसरा भाग छाती की भीतरी दीवाल से सटा हुआ है। इस फुप्फुसावरण के द्वारा फेफड़े छाती की दीवाल से आबद्ध हैं। दाहिने फेफड़े में तीन खण्ड हैं तथा बायें में दो खण्ड । हर फेफड़े में एक आधार है तथा एक शीर्ष है। आधार मध्य पट, पेशीय पटी की ओर जो कण्ठ तथा उदर का विभाजक है, निर्देशित है। शीर्ष ऊपर की ओर ग्रीवा - मूल के निकट है। न्यूमोनिया में आधार ही सूज जाता है। फेफड़े के शीर्ष भाग को पर्याप्त ओषजन (आक्सीजन) न मिलने से यक्ष्मा का शिकार बनना पड़ता है। यह टी.बी. के कीटाणुओं के लिए अनुकूल नीड़ अथवा प्रजनन क्षेत्र बन जाता है। कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायाम तथा अन्य प्राणायामों के अभ्यास से इन शीर्षों को पर्याप्त ओषजन (आक्सीजन) मिल जाता है। फल-स्वरूप टी.बी. (क्षय रोग) नहीं होता। प्राणायाम से फेफड़ों का विकास होता है। जो प्राणायाम का अभ्यास करता है, उसकी वाणी शक्तिशाली, मधुर तथा सुरीली होती है।

वायुमार्ग में नाक का आन्तरिक भाग, ग्रसनी या कण्ठ, स्वर-यन्त्र या वायु-मंजूषा या ध्वनि-पेटी जिसमें दो स्वर-तन्त्री हैं, श्वास-नाल, श्वास प्रणाल या दाहिनी तथा बायीं श्वास नलिकाएँ तथा छोटी श्वास नली हैं। श्वास लेते समय हम नासिका से वायु खींचते हैं। तदनन्तर - वायु ग्रसनी तथा स्वर-यन्त्र से हो कर श्वास-प्रणाल या श्वास-नाल में जाती है। वहाँ से वह दाहिनी तथा बायीं श्वास नलियों में जाती है। तदुपरान्त वह अनेकानेक श्वास नलियों से हो कर अन्त में फेफड़े के छोटे-छोटे वायुकोषों में प्रवेश करती है। फेफड़ों में ये वायु कोष करोड़ों की संख्या में हैं।

यदि फेफड़ों के वायु-कोषों को किसी समतल स्थान में फैलाया जाये, तो उनसे १,४०,००० वर्ग फीट का क्षेत्र ढक जायेगा।

उरः प्राचीर के कार्य से वायु फेफड़े में प्रवेश करती है। इसके फैलने पर छाती तथा फेफड़े का आकार बढ़ जाता है। इस प्रकार से सृष्ट शून्य स्थान को भरने के लिए बाह्य वायु झट भीतर प्रवेश करती है। उरःप्राचीर के शिथिल होने पर छाती तथा फेफड़े सिकुड़ते हैं और फेफड़ों से वायु निष्कासित हो जाती है।

स्वर - यन्त्र में स्थित स्वर-तन्त्रियों से ध्वनि उत्पन्न होती है। जब अत्यधिक गायन अथवा भाषण द्वारा अधिक तनाव पड़ने से ये स्वर - तन्त्रियाँ प्रभावित होती हैं, तो स्वर फट जाता है। स्त्रियों में ये तन्त्रियों छोटी होती हैं; अतः उनकी वाणी मधुर तथा सुरीली होती है। साधारणतः प्रति मिनट १६ बार श्वास लेते तथा छोड़ते हैं। न्यूमोनिया में यह संख्या बढ़ कर प्रति मिनट ६०, ७०, ८० हो जाती है। दमा में श्वास नलियाँ अनियमित हो जाती हैं। वे सिकुड़ती है; अतः श्वास लेने में कठिनाई होती है। प्राणायाम से इन नलिकाओं का अति-संकुचन या संकीर्णन दूर हो जाता है। स्वर-यन्त्र का ऊपरी भाग एक छोटे झिल्लीमय चिपटे ढक्कन से ढका होता है जिसे कण्ठपिधान कहते हैं। यह खाद्य-पदार्थ तथा जल को श्वसन मार्ग में प्रवेश करने से रोकता है। यह सुरक्षा-कपाट का काम करता है।

जब भोजन का एक कण भी श्वास-मार्ग में प्रवेश करने लगता है, तो तुरन्त खाँसी आ जाती है तथा वह कण बाहर फेंक दिया जाता है।

फेफड़े रुधिर को शुद्ध करते हैं। रुधिर दीप्त रक्त वर्ण तथा प्राणदायक गुणों तथा धर्मों से समृद्ध हो कर अपनी धमनीय यात्रा प्रारम्भ करता है। वह जब शिरीय मार्ग से लौटता है, तब विगुण, विवर्ण तथा शरीर के अपशिष्ट द्रव्यों से भाराक्रान्त रहता है। धमनियाँ वे रक्त नलिकाएँ हैं जिनसे हो कर शुद्ध ओषजनित रुधिर हृदय से शरीर के विभिन्न भागों को जाता है। शिराएँ वे नलिकाएँ हैं जो शरीर के विभिन्न भागों से दूषित रुधिर को लौटा लाती हैं। हृदय के दाहिने भाग में शिरा से प्राप्त दूषित रुधिर रहता है। हृदय के दाहिने भाग से यह दूषित रुधिर फेफड़ों में शुद्ध बनने के लिए जाता है। यह फेफड़ों के करोड़ों छोटे-छोटे वायु-कोषों में वितरित हो जाता है। हम श्वास लेते हैं। और वायु का ओषजन फेफड़े की केशवत् रुधिर-वाहिनियों की पतली दीवाल से हो कर दूषित रुधिर के सम्पर्क में आता है। इन रुधिर-वाहिनियों, जिन्हें फुप्फुसीय केशिकाएँ कहते हैं, की दीवालें बहुत ही पतली हैं। वे मलमल या छलनी की तरह हैं। इससे रुधिर सहज ही टपक कर या निःस्रवण हो कर बाहर आता है। ओषजन इन पतली कोशिकाओं की दीवाल से भीतर चला जाता है। ओषजन अब ऊतकों के सम्पर्क में आता है। यहाँ एक प्रकार की दहन क्रिया होती है।

रुधिर ओषजन को ग्रहण कर प्रांगारिक अम्ल वाति को छोड़ता है। प्रांगारिक अम्ल वाति अपशिष्ट उत्पाद तथा विषाक्त पदार्थ से उत्पन्न होता है जिसे रुधिर शरीर के सभी अंगों से एकत्रित करता है। यह शुद्ध रुधिर चार फुप्फुसीय शिराओं से बायें हृदयालिन्द में और वहाँ से बायें हृद्वेश्म में जाता है। यहाँ से रुधिर बड़ी धमनी में जाता है। इस महाधमनी के द्वारा वह शरीर की विभिन्न धमनियों में संचरित होता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि एक दिन में ३५,००० पिण्ट रुधिर फेफड़ों में शुद्ध बनने के लिए केशिकाओं द्वारा भेजा जाता है।

धमनियों से शुद्ध रुधिर पतली केशिकाओं में जाता है। केशिकाओं से हो कर रुधिर का लसीका स्रवित हो कर शरीर के ऊतकों को नहलाता तथा परिपोषित करता है। ऊतकों में ऊतक श्वास-क्रिया होती है। ऊतक ओषजन को ग्रहण करते तथा कार्बन डाई आक्साइड को छोड़ देते हैं। मल-पदार्थ शिराओं से हो कर हृदय से दाहिने भाग में जा पहुँचता है।

इस सूक्ष्म संरचना का निर्माता कौन है? इन अंगों के पीछे क्या आप ईश्वर के अदृश्य हाथ का भान कर रहे हैं? इस शरीर की रचना निःसन्देह ईश्वर की सर्वज्ञता की परिचायक है। हमारे हृदयों का अन्तर्यामी द्रष्टा के रूप में आन्तरिक उद्योगशाला के कार्यों का निरीक्षण करता है। उसकी उपस्थिति के बिना हृदय साध को धमनियों में भेज नहीं सकता तथा फेफड़े रुधिर-शोधन के कार्य को नहीं कर सकते। प्रार्थना कीजिए। उस प्रभु को मौन श्रद्धांजलि अर्पित कीजिए। सदा-सर्वदा उसकी याद बनाये रखिए। अपने शरीर के सभी कोशों में उसकी उपस्थिति का भान कीजिए।

९. इडा तथा पिंगला

मेरुरज्जु के दोनों ओर दो नाड़ियाँ हैं। बायीं नाड़ी को इडा कहते हैं। तथा दाहिनी पिंगला कहलाती है। कुछ इन्हें वाम तथा दक्षिण अनुसंवेदी रज्जु मानते हैं; परन्तु वास्तव में ये सूक्ष्म नलिकाएँ हैं जिनसे प्राण संचरित होता है। चन्द्रमा इडा में तथा सूर्य पिंगला में संचरित होता है। इडा शीत लाती है। पिंगला उष्णता लाती है। इडा बायीं नासिका से तथा पिंगला दाहिनी नासिका से बहती है। श्वास एक घण्टा दाहिनी नासिका से तथा एक घण्टा बायीं नासिका से चलती है। इडा तथा पिंगला से जब श्वास चलती है, तब मनुष्य सांसारिक कार्यों में ग्रस्त रहता है । सुषुम्ना के कार्यशील होने पर वह जगत् के लिए मृतवत् हो जाता है। वह समाधि में प्रवेश करता है। योगी प्राण को सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित करने का यथाशक्य प्रयत्न करता है। सुषुम्ना नाड़ी को ब्रह्म - नाड़ी भी कहते हैं। सुषुम्ना की बायीं ओर इडा है। तथा दाहिनी ओर पिंगला । चन्द्रमा तमोगुणी तथा सूर्य रजोगुणी है। विष सूर्य का तथा अमृत चन्द्रमा का भाग है। इडा तथा पिंगला समय (काल) परिलक्षित करती हैं। सुषुम्ना काल का भक्षण करती है।

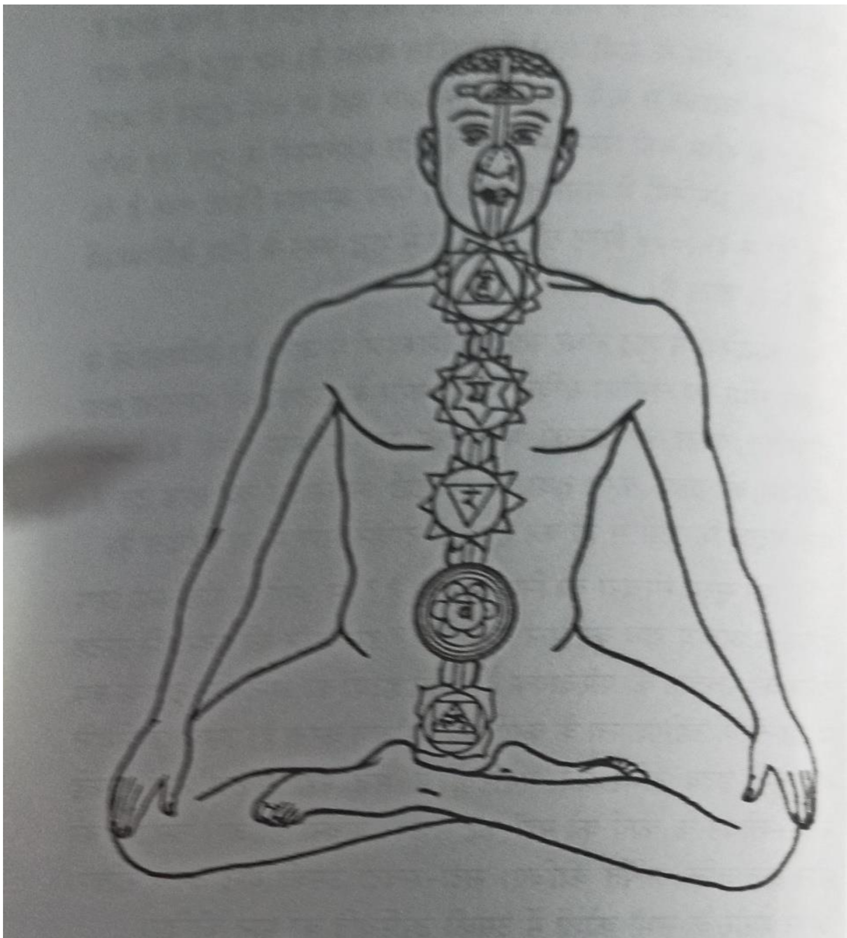

इडा, पिंगला, सुषुम्ना तथा षट्चक्र

१०. सुषुम्ना

सुषुम्ना सभी नाड़ियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह विश्व की पालिका तथा संसार-गति तथा मुक्ति-पथ है। यह गुदा के पीछे स्थित है। यह मेरुदण्ड से संलग्न है तथा यह शिर में ब्रह्मरन्ध्र को जाती है। यह अदृश्य तथा सूक्ष्म है। सुषुम्ना के कार्यशील होने पर योगी के वास्तविक कार्य का प्रारम्भ होता है । सुषुम्ना मेरुरज्जु अथवा मेरुदण्ड के मध्य से हो कर जाती है। जननेन्द्रिय से ऊपर तथा नाभि से नीचे कन्द है जो अण्डे के आकार का है। यहाँ से सभी ७२,००० नाड़ियाँ निकलती हैं। इनमें ७२ सामान्य तथा साधारणतः ज्ञात हैं। इनमें भी दश प्रमुख हैं जो प्राणवाहिनी हैं। इनके नाम हैं—इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनी । योगियों को नाड़ियों तथा चक्रों का ज्ञान होना चाहिए। इडा पिंगला तथा सुषुम्ना प्राणप्रवाहिनी हैं तथा इनके देवता क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि हैं। जब प्राण सुषुम्ना में संचरित हो, तो ध्यान के लिए बैठ जाइए। आप गम्भीर ध्यान में प्रवेश करेंगे। यदि कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी से संचरित हो तथा उसे क्रमशः एक-एक कर चक्रों से हो कर ऊपर ले जाया जाये, तो योगी विभिन्न प्रकार के अनुभवों, शक्तियों तथा आनन्द को प्राप्त करता है।

११. कुण्डलिनी

कुण्डलिनी सर्प-शक्ति अथवा प्रसुप्त शक्ति है। इसके साढ़े तीन कुण्डल हैं तथा मुख नीचे की ओर मेरुदण्ड के आधार मूलाधार चक्र में है। इसके जागरण के बिना समाधि की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

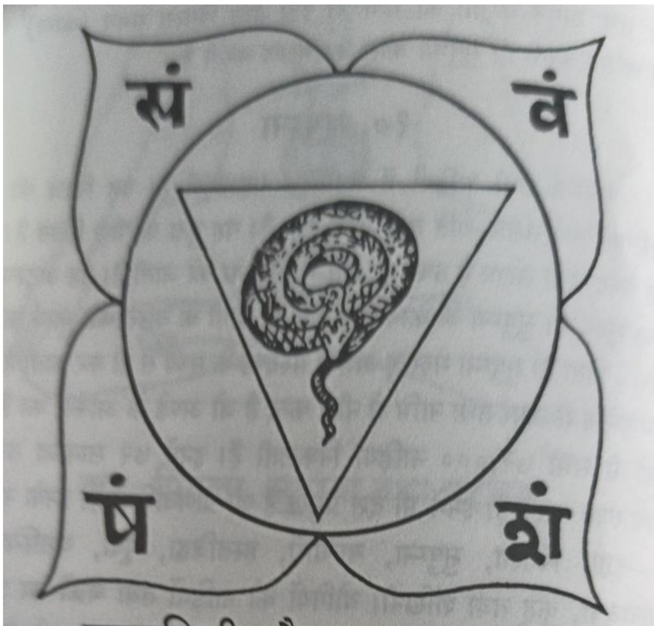

कुण्डलिनी और मूलाधार-चक्र

प्राणायाम में कुम्भक के अभ्यास से गरमी उत्पन्न होती है तथा उससे कुण्डलिनी जाग्रत हो कर सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर की ओर जाती है। यौगिक साधक तरह-तरह के दर्शनों का अनुभव करता है। कुण्डलिनी छह चक्रों से गुजरती हुई अन्ततः सहस्रार अथवा शिर के सहस्रदलपद्म में स्थित भगवान् शिव से मिल जाती है। अब निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है तथा योगी को मोक्ष और सभी ईश्वरीय ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। व्यक्ति को धारणा के साथ (मन की एकाग्रता के साथ) प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। जाग्रत कुण्डलिनी, जिसे मणिपूरक चक्र को ले जाते हैं, पुनः गिर कर मूलाधार को लौट सकती है। इसे पुनः प्रयत्नपूर्वक उठाना चाहिए। साधक को पूर्णतः निष्काम तथा वैराग्य से पूर्ण हो कर ही कुण्डलिनी जगाने का प्रयत्न करना चाहिए। कुण्डलिनी सूत्र के समान है तथा भास्वर है। जाग्रत होने पर यह डण्डे से मारे गये सर्प के समान फूत्कार करती है तथा शीघ्र ही सुषुम्ना-विवर में प्रवेश कर जाती है। जब यह एक चक्र से दूसरे चक्र को गमन करती है, तो मन की परतें एक-एक करके खुलती जाती हैं तथा योगी को विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

१२. षट्-चक्र

चक्र आध्यात्मिक शक्ति के केन्द्र हैं। ये सूक्ष्म शरीर में स्थित हैं; परन्तु भौतिक शरीर में भी इनके तदनुकूल केन्द्र हैं। इन चक्रों को खाली आँखों से नहीं देखा जा सकता है। केवल अतीन्द्रियदर्शी ही अपने सूक्ष्म नेत्रों से इन्हें देख सकता है। छह मुख्य चक्र हैं : मूलाधार (चार दल) गुदा में, स्वाधिष्ठान (छह दल) जननेन्द्रिय के स्थान पर, मणिपूरक (दश दल) नाभि में, अनाहत (बारह दल) हृदय में, विशुद्ध (सोलह दल) कण्ठ में तथा आज्ञा (दो दल) दोनों भौंहों के बीच में है। सातवें चक्र को सहस्रार कहते हैं जिसमें सहस्र दल हैं। यह शिर की चोटी में स्थित है। इन चक्रों के तदनुरूप भौतिक केन्द्र हैं जिनमें Sacral Plexus मूलाधार का, Prostatic Plexus स्वाधिष्ठान

का, Solar Plexus मणिपूरक का, Cariac Plexus अनाहत का. Laryngal Plexus विशुद्ध का तथा Cavernous Plexus आज्ञाचक्र का तदनुरूप कहते हैं।

१३. नाड़ियाँ

नाड़ियाँ सूक्ष्म तत्त्वों से निर्मित सूक्ष्म नलिकाएँ हैं जिनसे प्राणों का संचार होता है। उन्हें सूक्ष्म नेत्रों से ही देख सकते हैं। वे स्नायु नहीं हैं, उनकी संख्या ७२,००० है। इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना इनमें मुख्य हैं। सुषुम्ना इनमें सबसे मुख्य है।

१४. नाड़ी-शुद्धि

प्राण तथा अपान के योग को प्राणायाम कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—रेचक, पूरक तथा कुम्भक। प्राणायाम को ठीक-ठीक करने के लिए इन्हें संस्कृत अक्षरों से सम्बन्धित करते हैं। प्रणव (ॐ) ही प्राणायाम कहलाता है। पद्मासन में बैठ कर मनुष्य को नासिकाग्र में गायत्री देवी पर ध्यान करना चाहिए जो लाल वर्ण वाली बालिका के रूप में अनेकानेक चन्द्र-किरणों से आवृत, हंस पर आसीन, हाथ में गदा लिये हैं। वे 'अ' अक्षर की प्रतीक हैं। 'उ' अक्षर सावित्री का प्रतीक है जो गरुड़ पर आसीन, हाथ में चक्र लिये हुए श्वेत वर्ण की युवती हैं। 'म' अक्षर के लिए सरस्वती प्रतीक हैं जो कृष्ण वर्ण की वृद्धा स्त्री, साँड पर सवार तथा त्रिशूल धारण मे किये हुए हैं। साधक इस तरह ध्यान करे कि एकाक्षर परम ज्योति प्रणव ॐ ही इन तीनों 'अ', 'उ' तथा 'म' का मूल है। सोलह मात्रा तक बायीं नासिका द्वारा इडा से वायु को खींचते समय वह 'अ' पर ध्यान करे, ६४ मात्रा तक वह उस खींची वायु को रोकते हुए अक्षर 'उ' पर ध्यान करे। तब वह इस वायु का प्रश्वास १२ मात्रा तक करे तथा इस समय 'म' अक्षर पर ध्यान करे। इसी उपर्युक्त क्रम से वह बारम्बार प्राणायाम का अभ्यास करे।

आसन में दृढ़ता पा कर तथा आत्मसंयम का पूर्णतः पालन करते हुए योगी को सुषुम्ना की शुद्धि के लिए पद्मासन में बैठना चाहिए तथा बायीं नासिका से वायु खींच कर, जब तक हो सके, उसको रोके तथा दाहिनी नासिका से उसे धीरे-धीरे निकाल दे। तब वह पुनः दाहिनी नासिका से श्वास खींच कर, उसको रोक कर बायीं नासिका से निकाल दे। जिस नासिका से वह पूर्व-प्रश्वास करे, उसी से श्वास खींचे। पुनः इसी क्रम को करता रहे। जो इस प्रकार दाहिनी तथा बायीं नासिका से क्रमशः प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, उनकी नाड़ियाँ तीन महीने के अन्दर शुद्ध हो जाती हैं। वह सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा अर्धरात्रि के समय चार बार प्राण-निरोध का अभ्यास करे। शनैः-शनैः दिन में अस्सी बार वह चार सप्ताह तक करता रहे। प्रारम्भावस्था में पसीना निकलता है, मध्यम अवस्था में शरीर -कम्प होता है तथा अन्तिम अवस्था में शरीर वायु में उत्थित होता है। ये परिणाम पद्मासन में बैठ कर श्वास रोकने से प्राप्त होते हैं। प्रयत्न करने पर पसीना निकलने से अपने शरीर को अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। इससे शरीर दृढ़ तथा हलका बन जाता है। साधना के प्रारम्भ में दूध तथा घी से युक्त भोजन उत्तम है। इस नियम के पालन से मनुष्य को अभ्यास में दृढ़ता मिलती है तथा शरीर में ताप (जलन) नहीं होता। जिस तरह सिंह, हाथी, व्याघ्र को शनैः-शनैः पालतू बनाते हैं, उसी तरह प्राण भी प्रयत्नपूर्वक वश में हो जाता है।

प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियों की शुद्धि होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, सुन्दर स्वास्थ्य मिलता है तथा अनाहत नाद का श्रवण होता है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से जब नाड़ी केन्द्र शुद्ध हो जाते हैं, तब प्राण मध्य में स्थित सुषुम्ना के मुख से सुगमतापूर्वक प्रवेश करता है। ग्रीवा की मांस-पेशियों को आकुंचित कर तथा गुदा के आकुंचन से अपान को खींच कर प्राण को मध्य में सुषुम्ना में संचरित करते हैं। सुषुम्ना नाड़ी इडा तथा पिंगला के मध्य में है। प्राण साधारणतः इडा तथा पिंगला में बारी-बारी से संचरित होता रहता है। दीर्घ कुम्भक के द्वारा इसका दमन करते हैं तथा यह अपने परिचर आत्मा के साथ मध्यम नाड़ी सुषुम्ना में प्रवेश करता है। इसके प्रवेश से योगी

समाधि अवस्था को प्राप्त कर जगत् से मृतवत् हो जाता है। अपान को ऊपर खींच कर तथा प्राण को कण्ठ से नीचे धकेल कर, योगी वृद्धावस्था से मुक्त हो कर सोलह वर्ष का युवक बन जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से असाध्य बीमारियाँ जो एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक तथा यूनानी औषधियों से अच्छी नहीं होतीं, अच्छी हो जाती हैं।

नाड़ियों के शुद्ध हो जाने पर योगी के शरीर में कुछ बाह्य लक्षण प्रकट होते हैं। शरीर का हलकापन, वर्ण में चमक (कान्ति), जठराग्नि बढ़ना, शरीर की कृशता तथा शरीर में अशान्ति का अभाव — ये लक्षण हैं। ये शुद्धता के परिचायक हैं।

१५. षट्कर्म

जिनका शरीर स्थूल तथा कफ-प्रधान है, उन्हें प्राणायाम के अभ्यास के लिए अपने को तैयार करने से पहले छह क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। तब उनको प्राणायाम में सुगमतया सफलता मिलेगी। ये छह क्रियाएँ हैं : (१) धौति, (२) वस्ति, (३) नेति, (४) त्राटक, (५) नौलि तथा (६) कपालभाति ।

१६. धौति

चार अंगुल चौड़ा तथा पन्दरह फीट लम्बा मलमल का एक स्वच्छ टुकड़ा लीजिए। उसे गुनगुने जल में भिगो दीजिए। उस टुकड़े के सारे किनारे अच्छी तरह सिले होने चाहिए जिससे कहीं भी धागा ढीला हो कर लटकता न रहे। तब शनैः-शनैः इसे निगलिए तथा पुनः बाहर निकालिए। प्रथम दिन एक फुट निगलिए तथा नित्य-प्रति थोड़ा-थोड़ा कर बढ़ाते जाइए। इसे वस्त्र-धौति कहते हैं। प्रारम्भ में आपको वमन की थोड़ी प्रवृत्ति होगी; परन्तु तीसरे दिन यह रुक जायेगी। यह अभ्यास उदररोग जैसे जठर-शोथ, मन्दाग्नि, डकार आना, ज्वर, कटिवात, दमा, प्लीहा, कुष्ठरोग, चर्मरोग तथा कफ एवं पित्त के दोषों को दूर करता है। इसे नित्य-प्रति करने की आवश्यकता नहीं है। सप्ताह में एक बार अथवा पक्ष में एक बार इसका अभ्यास कर सकते हैं। वस्त्र को साबुन से धो कर सदा साफ रखिए। क्रिया के अनन्तर एक प्याला दूध पी लीजिए, अन्यथा अन्दर शुष्कता अनुभव होगी।

१७. वस्ति

इसे बाँस की नली के सहारे अथवा बिना किसी नली के ही किया जा सकता है; परन्तु बाँस की नली का रहना अधिक लाभकर है। पानी के टब में नाभि पर्यन्त पानी में बैठ जाइए। उत्कटासन लगाइए। शरीर को अपने पैरों के अगले भाग पर सन्तुलित कीजिए तथा एड़ियाँ नितम्बों से दबी हों। बाँस की छोटी नली लीजिए जो छह अंगुल लम्बी हो तथा चार अंगुल तक इस नली को गुदा में घुसाइए। घुसाने से पहले उसे वैसलीन अथवा साबुन अथवा एरण्ड के तेल से चिकना बना लीजिए। गुदा को सिकोड़िए। धीरे-धीरे आँतों में पानी खींचिए। पानी को भीतर अच्छी तरह हिलाइए। तब उसे बाहर फेंकिए। यह जल वस्ति है। यह प्लीहा, मूत्र-सम्बन्धी बीमारियों, गुल्म, पेशी-शूल, जलोदर, पाचन सम्बन्धी रोग, प्लीहा तथा आँतों के रोग, वात-पित्त-कफ-वार्धक्य जनित रोगों को दूर करता है। इस क्रिया को प्रातः खाली पेट करना चाहिए। क्रिया के उपरान्त एक प्याला दूध पीजिए अथवा भोजन कीजिए। नदी में खड़े हो कर भी आप इस क्रिया को कर सकते हैं।

बिना पानी की सहायता के ही वस्ति करने की दूसरी विधि भी है। इसे स्थल- वस्ति भी कहते हैं। भूमि पर पश्चिमोत्तानासन में बैठ जाइए तथा उदरीय एवं आन्त्र -भागों को धीरे-धीरे नीचे की ओर गति रखते हुए मन्थनपूर्वक घुमाइए। अवरोधिनी पेशियों को सिकोड़िए। इससे मलावरोध तथा सभी प्रकार के उदरीय रोग दूर होते हैं। यह जल-वस्ति जितना प्रभावकारी नहीं है।

१८. नेति

बारह अंगुल लम्बा एक पतला सूत लीजिए जिसमें कोई गाँठ न हो। इसे नासिका छिद्रों में घुसाइए तथा इसे भीतर ले जा कर मुँह से निकालिए। आप इसे एक नासिका छिद्र में डाल कर दूसरे नासिका छिद्र से निकाल सकते हैं। । सूत में सरेश लगा देते हैं जिससे वह नासिका में आसानी से घुसने के लिए अनम्य हो जाये। यह क्रिया कपाल को शुद्ध करती है तथा दृष्टि निर्मल तथा तीक्ष्ण बनाती है। इससे प्रतिश्याय तथा नासिका सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं।

१९. त्राटक

एकाग्र चित्त से बिना पलक गिराये किसी भी छोटी वस्तु अथवा बिन्दु पर तब तक टकटकी लगा कर देखिए, जब तक कि अश्रुपात न होने लगे।
प्राणायाम-साधना

इस अभ्यास से आँखों के सारे रोग दूर हो जाते हैं, मन की अस्थिरता दूर हो जाती है, शाम्भवी-सिद्धि प्राप्त होती है, संकल्प-शक्ति बढ़ती है तथा अतीन्द्रिय-दृष्टि उत्पन्न होती है।

२०. नौलि

यह उदर की ऋजुपेशी की सहायता से उदर-विलोड़न की क्रिया है। शिर को नीचे की ओर झुकायें। ऋजुपेशी को विलग करें तथा उसे दायीं ओर से बायीं ओर और बायीं ओर से दायीं ओर घुमायें। यह मलावरोध को दूर करती, जठराग्नि को प्रदीप्त करती तथा सभी आन्त्र- रोगों को नष्ट करती है।

२१. कपालभाति

लोहार की भाथी के समान शीघ्रतापूर्वक रेचक तथा पूरक कीजिए । इससे कफ के सभी विकार दूर होते हैं। इसका विस्तृत वर्णन पुस्तक के तृतीय अध्याय में 'कपालभाति' उप-शीर्षक के अन्तर्गत दिया जायेगा।

द्वितीय अध्याय

१. ध्यान- गृह

ताला-कुंजी से सुरक्षित एक पृथक् ध्यान-गृह अपने लिए रखिए। किसी भी व्यक्ति को इस कमरे में प्रवेश न करने दीजिए। इसे पवित्र बनाये रखिए। यदि आप ध्यानाभ्यास तथा प्राणायाम के लिए विशेष कमरा रखने में समर्थ नहीं हैं, तो किसी शान्त कमरे के कोने को इस कार्य के लिए अलग रख छोड़िए। इसमें परदा लगवा दीजिए। अपने आसन के समक्ष अपने गुरु अथवा इष्टदेवता का चित्र रखिए। ध्यान तथा प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व इस चित्र की नित्य प्रति शारीरिक तथा मानसिक पूजा कीजिए। रामायण, श्रीमद्भागवत, गीता, उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि कुछ पवित्र ग्रन्थों को वहाँ दैनिक स्वाध्याय के लिए रखिए। ऊनी कम्बल को चौहरा करके उसके ऊपर किसी कोमल सफेद वस्त्र को बिछा दीजिए। यही आपके लिए आसन का काम देगा। अथवा कुश का आसन बिछाइए। उसके ऊपर मृगचर्म अथवा व्याघ्रचर्म बिछाइए। प्राणायाम तथा ध्यान के अभ्यास के लिए इसी आसन पर बैठिए। आप सीमेंट का एक चबूतरा बनवा सकते हैं। उसके ऊपर अपना आसन बिछा सकते हैं। कीड़े-मकोड़े, चींटियाँ आदि आपको तंग नहीं करेंगे। जब आप आसन पर बैठें, तो ग्रीवा तथा शरीर को एक सीध में रखें। ऐसा करने से मेरुरज्जु, जो मेरुदण्ड में है, अबाध रहेगा।

२. पंच- आवश्यकीय

प्राणायाम के अभ्यास के लिए पाँच वस्तुएँ आवश्यक हैं। प्रथम अच्छा स्थान; द्वितीय अनुकूल समय; तृतीय सन्तुलित, पर्याप्त, हलका पौष्टिक आहार; चतुर्थ उत्साह, सहज भाव गाम्भीर्य से युक्त धैर्यपूर्ण अनवरत अभ्यास; और अन्तिम है नाड़ी शुद्धि । नाड़ी शुद्धि हो जाने पर साधक योगाभ्यास की प्रथमावस्था, आरम्भावस्था को प्राप्त करता है। प्राणायाम अभ्यासी को अच्छी क्षुधा, अच्छी पाचन शक्ति, प्रफुल्लता, साहस, बल, वीर्य, उच्चस्तरीय ओजस्विता तथा सुन्दर आकृति की प्राप्ति होती है। सूर्य नाड़ी अथवा पिंगला जिस समय काम करे अर्थात् जिस समय श्वास दाहिनी नासिका से चले, उस समय योगी को भोजन ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि पिंगला

नाड़ी गरमी देती है तथा भोजन को शीघ्र पचाती है। भोजन करने के तुरन्त बाद तथा अधिक भूख की अवस्था में प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। शनैः-शनैः एक बार में डेढ़ घण्टा कुम्भक करने में समर्थ बनना चाहिए। इसके द्वारा योगी बहुत सी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। जब कोई व्यक्ति अधिक देर तक श्वास को बन्द रखना चाहे, तो उसे प्राणायाम में कुशल योगी गुरु के पास रहना चाहिए। शनैः-शनैः अभ्यास के द्वारा एक से तीन मिनट तक श्वास को रोक सकते हैं। इसमें किसी की सहायता आवश्यक नहीं है। तीन मिनट का कुम्भक नाड़ी शुद्धि, मन की स्थिरता तथा सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए पर्याप्त है।

३. स्थान

एक एकान्त, सुन्दर तथा सुखद स्थान को चुन लीजिए जहाँ कोई अशान्ति अथवा विघ्न न हो, जो नदी, झील अथवा समुद्र के तट पर अथवा पर्वत के शिखर पर हो, जहाँ सुन्दर झरना हो, वृक्षों का कुंज हो और दूध तथा अन्य आहार-सामग्री सुगमतया उपलब्ध हो। एक छोटा कुटीर बना लीजिए। कुटीर के लिए आहाता हो। उसके कोने में एक कूप खुदवाइए। सभी दृष्टिकोणों से सन्तोषप्रद स्थल को प्राप्त करना असम्भव है।

नर्मदा, यमुना, गंगा, कावेरी, गोदावरी, कृष्णा आदि के तट कुटीर निर्माण के लिए बहुत ही अनुकूल हैं। ऐसे स्थान को चुनिए, जिसके निकट कुछ अन्य योगी साधक साधना करते हों। कठिनाई पड़ने पर उनका परामर्श ले सकते हैं। आपको योग की क्रियाओं में श्रद्धा होगी। जब आप दूसरों को भी इस प्रकार के योगाभ्यास में अनुरक्त देखेंगे, तो आपको प्रोत्साहन प्राप्त होगा और आप अपनी साधना में अध्यवसायपूर्वक संलग्न हो जायेंगे तथा उनसे आगे बढ़ निकलने का प्रयास करेंगे। नासिक, ऋषिकेश, झाँसी, प्रयाग, उत्तरकाशी, वृन्दावन, अयोध्या, वाराणसी आदि बहुत ही अच्छे स्थान हैं। जनाकीर्ण स्थान से सुदूर किसी स्थान को निर्धारित कर सकते हैं। यदि अधिक जल-संकुल स्थान के बीच कुटीर बनायेंगे, तो लोग कुतूहलवश आपको तंग करते रहेंगे। आपको वहाँ आध्यात्मिक स्पन्दन प्राप्त नहीं होगा। यदि गहन जंगल में आप कुटीर बनायेंगे, तो आप असुरक्षित रहेंगे। चोर तथा जंगली जानवर आपको कष्ट पहुँचायेंगे। भोजन की कठिनाई का प्रश्न उठेगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है- "समतल ; सब प्रकार से शुद्ध; कंकड़, अग्नि और बालू से रहित तथा शब्द, जल और आश्रय आदि की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल, नेत्रों को पीड़ा न देने वाले गुहा आदि वायुशून्य स्थान में मन को ध्यान में लगाना चाहिए।"

जो अपने घरों में अभ्यास करते हैं, वे एक कमरे को ही जंगल में बदल सकते हैं। कोई भी एकान्त कमरा उनके ध्यान गृह का अच्छी तरह काम दे सकता है।

४. समय

प्राणायाम का अभ्यास वसन्तु ऋतु अथवा शरद् ऋतु में समारम्भ करना चाहिए; क्योंकि इन ऋतुओं में बिना किसी कठिनाई या कष्ट के ही सफलता मिल जाती है। मार्च से अप्रैल तक वसन्त ऋतु का समय है। सितम्बर से अक्तूबर तक शरत्काल है। ग्रीष्म ऋतु में अपराह्न में तथा सायं को प्राणायाम का अभ्यास न कीजिए। प्रातः ठण्ढे समय में आप अभ्यास कर सकते हैं।

५. अधिकारी

जिसका मन शान्त है, जिसने इन्द्रियों को संयत कर रखा है, जिसमें गुरु तथा शास्त्रों के प्रति श्रद्धा है, जो आस्तिक है, जो भोजन, पान तथा शयन में अति नहीं करता तथा जिसमें जन्म-मृत्यु-चक्र से मुक्ति पाने की उत्कट

लालसा है, वही योगाभ्यास के लिए अधिकारी है। ऐसा व्यक्ति अभ्यास में सुगमतापूर्वक सफल हो सकता है। प्राणायाम का अभ्यास सावधानी, संलग्नता तथा श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

जो विषय सुख-परायण हैं, जो उद्दण्ड, मिथ्याचारी, असत्यवादी, कूटनीतिज्ञ, धूर्त तथा धोखेबाज हैं; जो साधुओं, संन्यासियों तथा अपने गुरुओं का अनादर करने तथा व्यर्थ बहस में मजा लेते हैं, जो बहुत बातूनी हैं; जो नास्तिक हैं, जो सांसारिक प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों से अधिक मिलते-जुलते हैं; जो निर्मम, कठोर तथा लोभी हैं तथा जो व्यर्थ व्यवहार किया करते हैं, वे प्राणायाम अथवा किसी भी योगाभ्यास में कदापि सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

अधिकारी तीन प्रकार के हैं— (१) उत्तम, (२) मध्यम तथा (३) अधम । संस्कार, बुद्धि, वैराग्य, विवेक तथा मुमुक्षुत्व की मात्रा एवं साधना-शक्ति के अनुसार ही यह विभाजन होता है।

आपको ऐसे गुरु के पास जाना चाहिए जो योगशास्त्र को जानता हो तथा जिसे उस पर अधिकार प्राप्त हो। उसके चरण-कमलों में बैठिए । उसकी सेवा कीजिए। समीचीन तथा युक्ति-संगत प्रश्नों के द्वारा अपनी शंकाओं को दूर कीजिए। उपदेश ग्रहण कीजिए तथा गुरूपदिष्ट विधि से उत्साह, जोश, मनोयोग, गाम्भीर्य तथा श्रद्धापूर्वक उनका अभ्यास कीजिए।

प्राणायाम के साधक को चाहिए कि वह सदा मधुर तथा सदय शब्द बोले। वह सबके लिए दयालु हो। वह सत्य बोले। उसे वैराग्य, धैर्य, श्रद्धा, भक्ति, करुणा आदि का विकास करना चाहिए। उसे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। गृहस्थ को चाहिए कि वह अभ्यास-काल में मैथुन के विषय में बहुत ही संयत रहे।

६. आहार-संयम

योगकुशल व्यक्ति को चाहिए कि वह उन खाद्य पदार्थों का त्याग करे जो योगाभ्यास में हानिकारक हों। उसे नमक, सरसों, खट्टा, उष्ण, चरपरा तथा तिक्त पदार्थ, हींग, अग्नि-पूजा, स्त्री, अति-भ्रमण, सूर्योदय के समय स्नान, उपवास द्वारा शरीर को कृश बनाना आदि का परित्याग करना चाहिए।

अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में दूध तथा घी का आहार विहित है। गेहूँ, हरी दाल तथा लाल चावल भी उन्नति में सहायक हैं। इससे साधक अपनी श्वास को इच्छानुसार रोके रख सकता है। वह इच्छानुसार केवल कुम्भक कर सकता है। बिना रेचक पूरक किये ही श्वास को रोके रखना केवल कुम्भक है। केवल कुम्भक की प्राप्ति हो जाने पर रेचक - पूरक की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे योगी के लिए तीनों लोकों में कुछ भी अलभ्य नहीं है। अभ्यास के प्रारम्भ में पसीना निकलता है। जिस तरह मेढक उछलता चलता है, उसी तरह योगी पद्मासन में बैठे हुए पृथ्वी पर चलता है। और अधिक अभ्यास के अनन्तर वह भूमि पर से ऊपर उठ जाता है। पद्मासन में बैठे हुए ही वह वायु में ऊपर उठ जाता है। तब उसे आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। शरीरगत न्यूनाधिक पीड़ा योगी पर प्रभाव नहीं डालती। तब मल-मूत्र तथा निद्रा कम पड़ जाते हैं। उसमें अनु, आँखों में कीच, नाक, लार बहना, पसीना तथा मुँह में दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं होते। कुछ अधिक अभ्यास कर लेने पर उसे प्रबल शक्ति प्राप्त होती है जिससे वह भूचर सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस सिद्धि के द्वारा वह इस पृथ्वी पर चलने वाले सभी प्राणियों को अपने वश में कर लेता है। व्याघ्र, शरम, हाथी, जंगली साँड़ तथा सिंह उसके थप्पड़ खा कर मर सकते हैं। वह कामदेव के समान ही सुन्दर हो जाता है। वीर्य के परिरक्षण के कारण योगी के शरीर से सुन्दर सुगन्ध निकलती है।

७. यौगिक आहार

खाद्य पदार्थों के चुनाव में आन्तरिक वाणी आपका मार्ग प्रदर्शन करेगी। अपनी प्रकृति तथा अपने शरीर-गठन के अनुसार सात्त्विक यौगिक आहार चुनाव में आप स्वयं सर्वोत्तम निर्णायक हैं। इससे अधिक जानकारी परिशिष्ट में दी गयी है।

८. मिताहार

आधा पेट पौष्टिक सात्त्विक आहार कीजिए। चौथाई पेट पानी से भर लीजिए। बाकी चौथाई पेट वायु के (गैस के) प्रसरण तथा ईश्वरोपासना के लिए खाली रखिए।

९. भोजन में शुद्धता

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः ।
स्मृतिर्लाभ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

आहार की शुद्धता से अन्तःकरण की शुद्धता होती है। अन्तःकरण की शुद्धता से स्मृति दृढ़ होती है। स्मृति के दृढ़ होने से सभी ग्रन्थियाँ खुल हैं तथा ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

भोजन करने के पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास न करें। अधिक भूख लगे रहने पर भी प्राणायाम न करें। प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व शौचालय जायें तथा आँतों को रिक्त कर लें। प्राणायाम के अभ्यासी को खान-पान में संयम रखना चाहिए।

जो भोजन में नियमित तथा सुसंयमित हैं, वे अभ्यास-काल में अत्यधिक लाभ उठाते हैं, वे शीघ्र ही सफलता प्राप्त करते हैं। जो लोग जीर्ण कोष्ठबद्धता के शिकार हैं तथा जिन्हें मध्याह्नोपरान्त शौच जाने की आदत है, वे प्रातः बिना शौच-निवृत्ति के ही प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। उन्हें यथा-सम्भव प्रातः शौच जाने की आदत डालनी चाहिए।

योग-साधना में आहार का बहुत महत्त्व है। साधक को अपनी साधना की प्रारम्भावस्था में खाद्य पदार्थों के चुनाव में सावधान रहना चाहिए। बाद में प्राणायाम में सिद्धि मिल जाने पर भोजन-सम्बन्धी कठिन नियमों को त्यागा जा सकता है।

१०. चरु

यह उबाले उजले चावल, घी, चीनी तथा दूध के मिश्रण से बनता है। यह ब्रह्मचारियों तथा प्राणायाम के अभ्यासियों के लिए पौष्टिक आहार है।

११. दुग्धाहार

दूध को गरम करना चाहिए, अधिक उबालना नहीं चाहिए। गरम करने की प्रक्रिया यह है कि ज्यों-ही दूध क्वथनांक पर पहुँच जाये, उसको तत्काल अग्नि से हटा लेना चाहिए। अधिक उबालने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं तथा वह आहार के रूप में व्यर्थ हो जाता है। दूध पूर्ण आहार है, क्योंकि इसमें विभिन्न पोषक तत्त्वों का सन्तुलन है। यह आँतों में बहुत कम मल छोड़ता है। प्राणायाम- अभ्यास के समय यह योगियों के लिए उत्तम आहार है।

१२. फलाहार

फलाहार शरीर पर बहुत ही सुन्दर एवं लाभकारी प्रभाव डालता है। तथा यह योगियों के लिए बहुत ही वांछनीय आहार है। यह स्वाभाविक आहार है। फलों में शक्ति-उत्पादन की महती क्षमता है। केले, अंगूर, मीठी नारंगी, सेव, अनार, आम, चिक्कू, खजूर आदि पौष्टिक फल हैं। नींबू में रक्त को शुद्ध एवं पुष्ट करने की शक्ति है। फल रस में विटामिन सी रहता है। चिक्कू (सपोटा) शुद्ध रुधिर की वृद्धि करते हैं। आम तथा दूध का सम्मिश्रण बहुत ही स्वास्थ्यप्रद तथा रुचिकर है। आप आम तथा दूध पर ही जीवन-निर्वाह कर सकते हैं। अनार का रस बहुत ही ठण्ढा तथा पौष्टिक है। केले बहुत ही बलवर्धक तथा लाभकारी हैं। फल से धारणा-शक्ति तथा एकाग्रता बढ़ती है।

१३. अनुमत खाद्य पदार्थ

जौ, गेहूँ, घी, दूध, बादाम आदि दीर्घायु प्रदान करते तथा शक्ति एवं बल बढ़ाते हैं। योगी तथा साधक के लिए जौ बहुत ही उत्तम खाद्य पदार्थ है। यह शीतलकारी भी है। 'एक सन्त का अनुभव' नामक पुस्तक के लेखक श्री स्वामी नारायण, जो टाट की कौपीन लगाये रहते थे, जौ की रोटी पर ही जीवन-निर्वाह करते थे। वे अपने शिष्यों को जौ की रोटी खाने का ही परामर्श देते थे। कहते हैं सम्राट् अकबर जौ की ही रोटी खाता था।

आप गेहूं, चावल, जौ की रोटी, गो-दुग्ध, घी, शक्कर, मक्खन, मिश्री, मधु, सौंठ, मूंग की दाल, पंच-शाक, आलू, किशमिश, खजूर तथा हरी दाल से बनी पतली खिचड़ी का व्यवहार कर सकते हैं। खिचड़ी हलकी एवं अनुकूल होती है। कुम्भक की वृद्धि के साथ-साथ उसी अनुपात में भोजन में कमी लानी चाहिए। अपने अभ्यास के प्रारम्भ में भोजन में कमी न लाइए। साधना काल में सर्वदा अपनी सहज बुद्धि से ही काम लेना चाहिए। तूर की दाल खा सकते हैं। पंच-शाक पालक जाति का है। इनकी संख्या पाँच है। ये सुन्दर सब्जियाँ हैं। इन शाकों की मोटी, सरस तथा किशोर पत्तियों को उबाल कर बघारते या घी के साथ तलते हैं। जब पिंगला या सूर्य नाड़ी दायीं नासिका से चलती हो, तब भोजन करना चाहिए। सूर्य - नाड़ी गरमी उत्पन्न करती है। इससे भोजन शीघ्र पच जाता है। आप कटहल, ककड़ी, बैंगन, केले के डण्ठल, लौकी, परवल तथा भिण्डी का भी व्यवहार कर सकते हैं।

१४. निषिद्ध आहार

अधिक मसालेदार भोजन, तिक्त कढ़ी, चटनी, मांस, मिर्च, खट्टे पदार्थ, इमली, सरसों, सभी प्रकार के तेल, हींग, नमक, लहसुन, प्याज, उड़द की दाल, सभी तिक्त वस्तुएँ, नीरस भोजन, काला शक्कर, सिरका, मदिरा, खट्टा दही, बासी भोजन, अम्ल, तीक्ष्ण पदार्थ, गरिष्ठ भोजन, भुने हुए पदार्थ, भारी सब्जी, अधपके अथवा अधिक

पके फल, कद्दू आदि का परिहार करना चाहिए। मांस मनुष्य को वैज्ञानिक तो बना सकता है; परन्तु वह शायद ही दार्शनिक, योगी अथवा तत्त्वज्ञानी बनाये। प्याज तथा लहसुन मांस से भी अधिक बुरे हैं। सभी खाद्य पदार्थों में कुछ-न-कुछ नमक अवश्य रहता है; अतएव यदि आप अलग से नमक नहीं मिलाते, तब भी शरीर अन्य खाद्य पदार्थों से नमक की आवश्यक मात्रा प्राप्त कर लेगा। नमक के त्याग से नमक के तेजाब की अपूर्णता तथा अग्निमान्ध उत्पन्न नहीं होंगे जैसा कि विषम-चिकित्सा के डाक्टर नासमझी से मानते हैं। नमक को त्याग देने से कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। महात्मा गान्धी तथा स्वामी योगानन्द ने तेरह वर्ष से अधिक समय तक नमक त्याग दिया था। नमक काम-वासना को उद्दीप्त करता है। नमक त्याग करने से जिह्वा को और उसके द्वारा मन को वश में करने में सहायता मिलती है। इससे आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। अग्नि के पास बैठना, उपवास, स्त्रियों तथा सांसारिक लोगों का संग, यात्रा, अधिक भ्रमण, अधिक भार ले कर चलना, प्रातः ठण्ढे जल से स्नान, कठोर वचन, असत्य वचन, बेईमानी, चोरी, जीव-हत्या, मन, वचन अथवा कर्म से किसी प्रकार की हिंसा, घृणा तथा शत्रुता, झगड़ा, लड़ाई, अभिमान, दुरंगी चाल चलना, चुगली खाना, षड़यन्त्र करना, कुटिलता, पिशुनता, आत्मा अथवा मोक्ष को छोड़ अन्य विषयों की वार्ता, प्राणियों तथा मनुष्यों के प्रति निर्दयता, अत्यधिक उपवास अथवा दिन में एक बार ही भोजन करना आदि प्राणायाम के लिए निषिद्ध हैं।

१५. साधना के लिए कुटीर

प्राणायाम के साधक को एक सुन्दर कुटीर का निर्माण कर लेना चाहिए जिसमें छोटा वातायन हो तथा कोई छेद अथवा दरारें न हों। इसे गोबर अथवा चूने से भली-भाँति लीप-पोत कर रखना चाहिए। यह खटमल, मच्छर तथा जूँ और चीलरों से पूर्णतः मुक्त होना चाहिए। प्रतिदिन झाडू से इसकी भली-भाँति सफाई करनी चाहिए। इसे धूप तथा अगरबत्ती जला कर सुवासित रखना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह वस्त्र, मृग-चर्म तथा कुशासन को एक के ऊपर दूसरा बिछा कर अपने लिए आसन तैयार करे जो न तो अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा। उस पर पद्मासन लगा कर बैठ जाये। अपने शरीर को सीधा रखे तथा श्रद्धा से करबद्ध हो अपने इष्टदेव और तत्पश्चात् ॐ श्री गणेशाय नमः' उच्चारण द्वारा नमस्कार करे। तब वह प्राणायाम का अभ्यास करे।

१६. मात्रा

हाथ को जानु के ऊपर से चारों ओर फिरा कर एक चुटकी बजाने में जितना काल लगता है, उसका नाम मात्रा है।

समय की किसी भी इकाई को मात्रा कहते हैं। जितना समय एक बार के पलक झपकने में लगता है, उस समय को भी मात्रा कहते हैं। एक बार सामान्य श्वास के आने-जाने के समय को भी मात्रा कहते हैं। एकाक्षर ॐ के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे भी एक मात्रा मानते हैं। यह बहुत ही सुविधाजनक है। प्राणायाम के बहुत से साधक अपने अभ्यास में इसी मात्रा का प्रयोग करते हैं।

१७. पद्मासन

यह कमलासन के नाम से भी ज्ञात है। इस आसन के लगाने पर यह कमल के आकार-जैसा प्रतीत होता है; इसलिए इसे पद्मासन कहते हैं। जप तथा ध्यान के चार आसन बतलाये गये हैं, जिनमें पद्मासन सर्वोत्तम है। यह आसन ध्यान के लिए सर्वश्रेष्ठ है। घेरण्ड, शाण्डिल्य आदि ऋषि इस महत्त्वपूर्ण आसन की बड़ी महिमा बताते हैं।

यह गृहस्थों के लिए बहुत ही अनुकूल है। महिलाएँ भी इस आसन का अभ्यास कर सकती हैं। पद्मासन पतले व्यक्तियों तथा युवकों के लिए अनुकूल है।

विधि

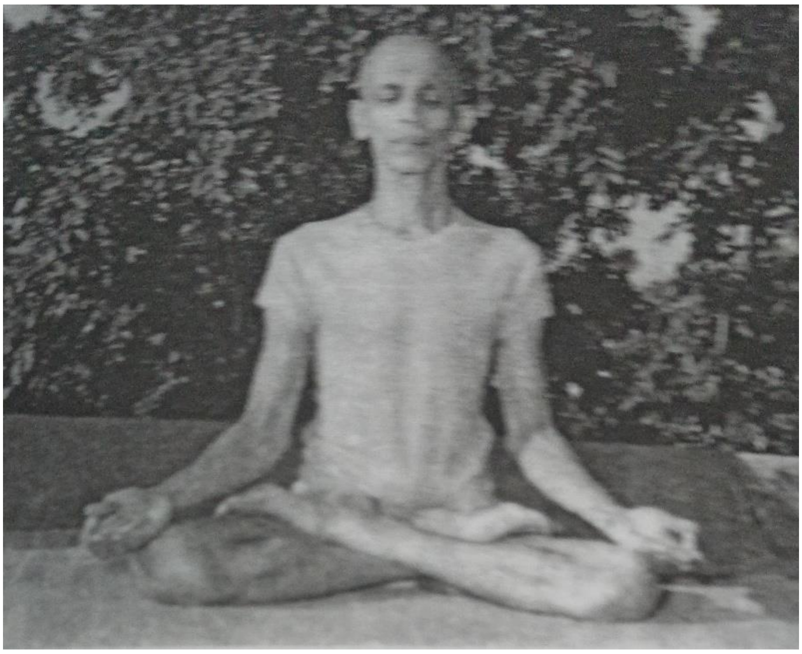

पैरों को सामने फैला कर भूमि पर बैठ जाइए। तब दाहिना पैर बायीं जंघा पर तथा बायें पैर को दाहिनी जंघा पर रखिए। हाथों को घुटनों पर रखिए। आप उँगलियों की कैंची बना कर बायें टखने पर रख सकते हैं। अथवा आप बायें हाथ को बायें घुटने पर तथा दाहिने हाथ को दाहिने घुटने पर इस प्रकार रखें कि हथेली ऊपर की ओर हो तथा तर्जनी अँगूठे के मध्य भाग को स्पर्श करती हो। इसे चिन्मुद्रा कहते हैं।

१८. सिद्धासन

महत्त्व की दृष्टि से पद्मासन के पश्चात् सिद्धासन की बारी आती है। कुछ लोग ध्यानाभ्यास के लिए इसकी पद्मासन से भी बढ़ कर प्रशंसा करते हैं। यदि आप इस आसन पर जय प्राप्त कर लें, तो आपको बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। प्राचीन काल में बहुत से सिद्धों ने इसका अभ्यास किया था; अतः इसे सिद्धासन कहते हैं।

मोटी जंघाओं वाले स्थूलकाय व्यक्ति इसे सरलतापूर्वक कर सकते हैं। वस्तुतः कुछ लोगों के लिए यह पद्मासन से बढ़ कर है। युवक ब्रह्मचारी जो ब्रह्मचर्य पालन में प्रतिष्ठित होना चाहते हैं, इस आसन का अभ्यास करें। यह महिलाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।

विधि

बायीं एड़ी को गुदा के पास और दाहिनी एड़ी को लिंग की जड़ के पास रखिए। पैरों को इस प्रकार भली-भाँति रखें कि गुल्फ-सन्धियाँ एक-दूसरे को स्पर्श करें। हाथों को पद्मासन की भाँति ही रख सकते हैं।

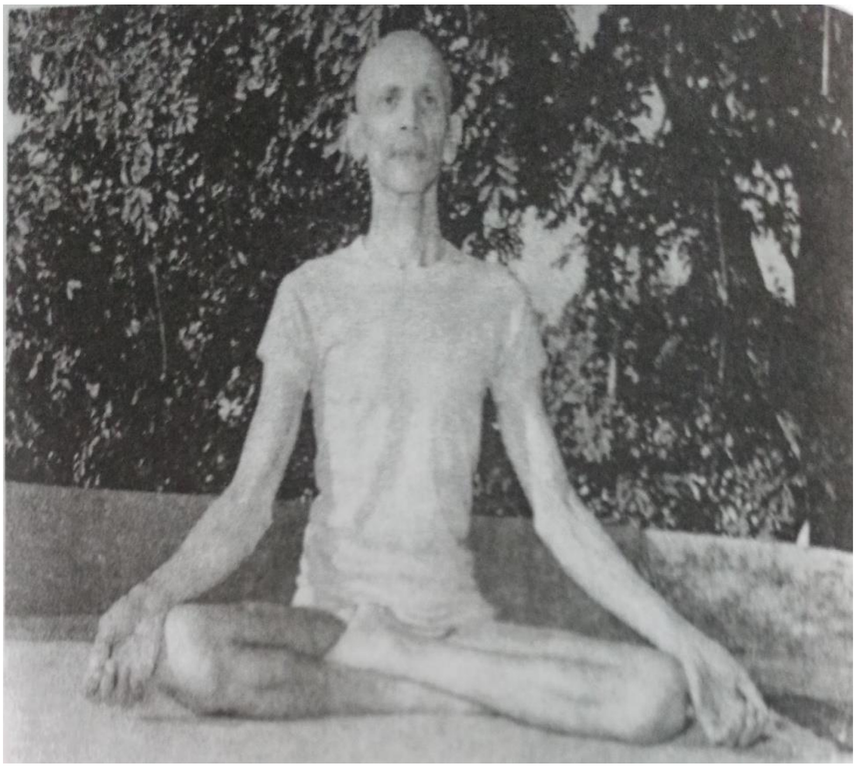

१९. स्वस्तिकासन

शरीर को सीधा रख कर सुगमता से बैठना ही स्वस्तिकासन है। पैरों को आगे की ओर फैलाइए। दायें पैर को मोड़ कर दाहिनी जंघा के पास रखिए। उसी प्रकार दाहिने पैर को मोड़ कर उसे पैरों की पिण्डली और जाँघों के बीच दबा कर रखिए। अब आप अपने पैरों को जाँघों तथा पिण्डलियों के बीच पायेंगे। यह ध्यान के लिए बहुत ही सुखद है। हाथों को वैसे ही रखिए जैसे पद्मासन में बताया गया है।

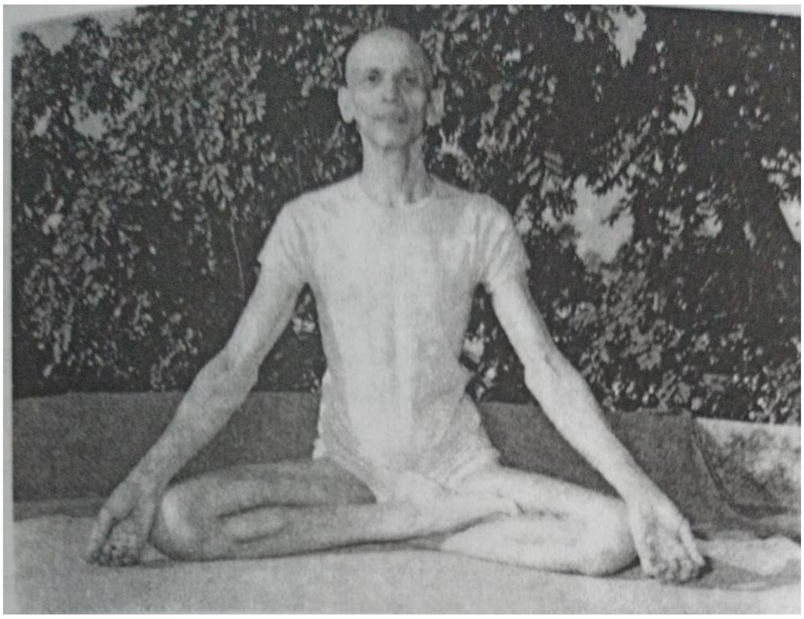

२०. समासन

बायीं एड़ी को दाहिनी जंघा के जोड़ में तथा दाहिनी एड़ी को बाय जंघा के जोड़ में रखिए। आराम से बैठिए। बायीं या दाहिनी - किसी भी ओर न झुकिए। यही समासन है।

२१. बन्ध-त्रय

चार वेध है—सूर्य, उज्जायी, शीतली तथा वस्ति। इन चार वैधों से जब कुम्भक की क्रिया की जाने को हो, तो निष्पाप योगी को बन्ध-त्रय का अभ्यास करना चाहिए।

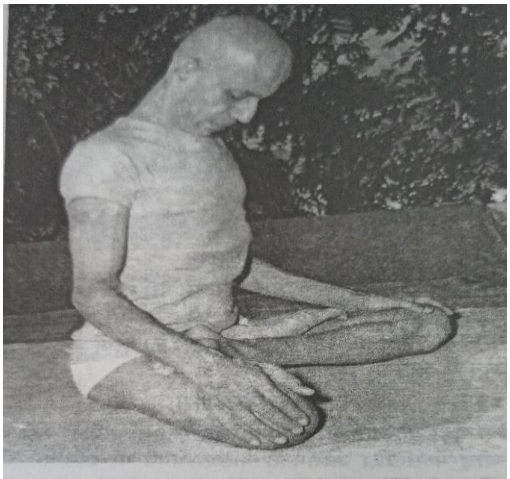

जालन्धर–बन्ध

पहला बन्ध है मूल-बन्ध, दूसरा उड्डियान -बन्ध और तीसरा जालन्धर - बन्ध। उनके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है।

अपान की गति नीचे की ओर है। गुदा को सिकोड़ कर अपान को ऊपर खींचने से वह बाध्य हो कर ऊपर को जाता है। इस क्रिया को मूल-बन्ध कहते हैं। जब अपान ऊपर उठ कर अनि-स्थान में पहुँचता है, तब वायु से फूँके जाने पर अग्नि की ज्वाला दीर्घ हो जाती है। अनि तथा अपान प्रदीप्तावस्था में प्राण से मिल जाते हैं। इस अग्नि से, जो बहुत प्रचण्ड होती है, एक प्रकार की ज्वाला निकलती है जो सुप्त कुण्डलिनी को जगा देती है। तब कुण्डलिनी सर्प के समान फुंफकारती है। दण्ड-प्रहार से जिस तरह सर्प सीधा उठ जाता है, उसी तरह कुण्डलिनी जग कर ब्रह्म-नाड़ी (सुषुम्ना) के छिद्र में प्रवेश करती है। अतः योगियों को नित्य प्रति मूल-बन्ध का अभ्यास करना चाहिए।

कुम्भक के अन्त तथा पूरक के प्रारम्भ में उड्डियान -बन्ध लगाना चाहिए। इस बन्ध में प्राण 'उड्डीयते' सुषुम्ना में ऊपर जाता है; इसीलिए योगी जन इसे उड्डियान कहते हैं। वज्रासन में बैठ कर तथा दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठों को दोनों टखनों के पास पकड़ कर सरस्वती-नाड़ी की गति को धीरे-धीरे पहले हृदय और फिर गरदन की ओर ले जाना चाहिए। सरस्वती - नाड़ी का स्थान उदर के पश्चिमी भाग में नाभि के ऊपर है। जब प्राण नाभि के सन्धि-स्थान में पहुँचता है, तब यह नाभि-सम्बन्धी सभी रोगों को दूर कर देता है, अतः इसे दक्षतापूर्वक करना चाहिए।

पूरक के अन्त में जालन्धर-बन्ध का अभ्यास करना चाहिए। गरदन को सिकोड़ कर तथा वायु को ऊपर जाने से रोकना जालन्धर-बन्ध का कार्य है। शिर को आगे झुका कर गरदन को संकुचित कर ठुड्डी को छाती से लगाना चाहिए। ऐसा करने से प्राण ब्रह्म-नाड़ी से गतिशील होता है। उपर्युक्त प्रकार से आसन पर बैठ कर मनुष्य को सरस्वती-नाड़ी को जाग्रत करके प्राण को वश में कर लेना चाहिए। पहले दिन कुम्भक चार बार, दूसरे दिन दश बार और फिर अलग से पाँच बार करना चाहिए। तीसरे दिन बीस बार करना पर्याप्त है। फिर उसके बाद कुम्भक बन्ध के साथ प्रतिदिन दो बार बढ़ाते हुए करना चाहिए।

२२. आरम्भ-अवस्था

तीन मात्रा के साथ प्रणव का उच्चारण करना चाहिए, जिससे पहले के पाप नष्ट हो जायें। प्रणव-मन्त्र सभी बाधाओं तथा पापों को नष्ट करता है। इसके अभ्यास से योगी आरम्भावस्था को प्राप्त करता है। शरीर से पसीना निकलने लगता है। जब शरीर पसीने से तर हो जाये, तब योगी को चाहिए कि वह उसे हाथों से भली-भाँति मले। शरीर में कम्पन भी होता है। वह कभी-कभी मेढक की भाँति उछलता है।

२३. घट-अवस्था

तब घटावस्था की बारी आती है। यह दूसरी अवस्था है, जिसे कुम्भक के सतत अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। प्राण तथा अपान, मनस् तथा बुद्धि अथवा जीवात्मा तथा परमात्मा का जब पूर्ण अविरोध योग हो जाता है, तब इसे घट-अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त योगी पूर्व बतलाये हुए समय के चतुर्थांश काल तक ही अभ्यास कर सकता है। दिन में तथा सन्ध्या को तीन घण्टे तक ही अभ्यास करना चाहिए। वह दिन में एक बार ही केवल कुम्भक का अभ्यास करे। कुम्भक-अवस्था में इन्द्रियों को विषयों से पूर्णतः मोड़ लेना प्रत्याहार है। जो कुछ भी वह आँखों से देखे, उसे वह आत्मा समझे। जो कुछ भी वह कानों से सुने, उसे आत्मा समझे। जो कुछ भी वह नासिका से सूंघे, उसे आत्मा समझे।

जो कुछ भी वह जिह्वा से चखे, उसे आत्मा समझे। जो कुछ भी वह त्वचा से स्पर्श उसे आत्मा समझे। तब योगी को विभिन्न आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-गमन (योगी क्षण मात्र में सैकड़ों कोस दूर जा सकता है), भाषण-शक्ति, इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति, अदृश्य बनने की शक्ति तथा लोहे को स्वर्ण में परिणत करने की शक्ति को योगी प्राप्त कर लेता है।

जो योगी सावधानीपूर्वक योग का अभ्यास करता है, वह भूमि से ऊपर उठने की शक्ति को प्राप्त करता है। तब ज्ञानी योगी को ऐसा विचार करना चाहिए कि ये सिद्धियाँ योगसिद्धि में बाधाएँ हैं। वह कभी उनमें मनोरंजन न करे। योगी कदापि किसी व्यक्ति के समक्ष इन शक्तियों का प्रदर्शन न करे। वह इस संसार में साधारण व्यक्ति के समान रहे जिससे ये शक्तियाँ गुप्त रहें। निश्चय ही उसके शिष्य अपनी इच्छा पूर्ति के लिए उससे इन सिद्धियों के प्रदर्शन की याचना करेंगे। जो व्यक्ति सांसारिक कर्तव्यों में रत है, वह योगाभ्यास भूल जाता है। अतः उसे गुरु के वचन को सदा ध्यान में रखते हुए अहर्निश योगाभ्यास करना चाहिए। जो सदा योगाभ्यास में रत है, वह घटावस्था को प्राप्त करता है। सांसारिक व्यक्तियों के व्यर्थ संग से कुछ भी लाभ नहीं होता। अतः मनुष्य को अति प्रयासपूर्वक कुसंग का परित्याग कर योगाभ्यास करना चाहिए।

२४. परिचय - अवस्था

तब इस प्रकार सतत अभ्यास के द्वारा तीसरी अवस्था-परिचय- अवस्था की प्राप्ति होती है। उग्र अभ्यास के द्वारा वायु कुण्डलिनी का भेदन करती है तथा विचार द्वारा अग्नि के साथ अबाध रूप से सुषुम्ना में प्रवेश करती है, जब चित्त प्राण के साथ सुषुम्ना में प्रवेश करता है, तो यह शिर में प्राण के साथ सर्वोच्च स्थान को जा प्राप्त होता है। जब योगी योगाभ्यास के द्वारा क्रिया-शक्ति प्राप्त करता है तथा छह चक्रों का भेदन करता है, तब वह परिचय की सुरक्षित अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कर्म के त्रिविध फलों (जाति, आयु, भोग) को वह देख लेता है। तब योगी को प्रणव के द्वारा कर्म-राशि को विनष्ट कर देना चाहिए। वह शरीर के विभिन्न स्कन्दों को सजा कर विभिन्न शरीर धारण कर काय-व्यूह का निर्माण करे जिससे सारे पूर्व-कर्म जो पुनर्जन्म-प्रदायक हैं, समाप्त हो जायें। उस समय महान् योगी पंचविध धारणा का अभ्यास कर पंच-तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर ले। तब उसे किसी भी तत्त्व से भय न रहेगा।

२५. निष्पत्ति-अवस्था

यह प्राणायाम की चौथी अवस्था है। क्रमिक अभ्यास द्वारा योगी निष्पत्ति-अवस्था प्राप्त करता है। यह अन्तिम अवस्था है। सारे कर्म-बीजों को विनष्ट कर योगी अमृत-सुधा का पान करता है। वह भूख-प्यास, निद्रा, मूर्च्छा आदि का शिकार नहीं बनता। वह पूर्णतः स्वतन्त्र बन जाता है। वह जगत् में कहीं भी विचरण कर सकता है। वह कभी पुनर्जन्म नहीं लेता। वह सारे रोग, क्षय तथा जरावस्था से मुक्त हो जाता है। वह समाधि-सुख का उपभोग करता है। उसे अन्य यौगिक अभ्यास की आवश्यकता नहीं रह जाती। जब कुशल शान्त मन योगी जिह्वा को तालु की जड़ में लगा कर प्राण-वायु का पान करता है, जब वह प्राण तथा अपान के कार्य और नियमों को जान लेता है, तब वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

ज्यों-ज्यों साधक सुव्यवस्थित तथा नियमित साधना द्वारा क्रमशः उन्नति करता जायेगा, त्यों-त्यों उसे स्वतः ही इन अवस्थाओं का एक-एक कर अनुभव होगा। अधीर साधक अनियमित अभ्यास के कारण इन अवस्थाओं में किसी एक का भी अनुभव नहीं कर सकता है। मिताहार तथा ब्रह्मचर्य के पालन पर ध्यान देना चाहिए।

तृतीय अध्याय

१. प्राणायाम क्या है ?

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः- आसन के स्थिर होने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।"

पतंजलि के योगसूत्र (२/४९) में प्राणायाम की यही परिभाषा बतलायी गयी है।

बाहर की वायु का नासिका द्वारा अन्दर प्रवेश करना श्वास कहलाता है। कोष्ठ-स्थित वायु का नासिका का द्वारा बाहर निकलना प्रश्वास कहलाता है। आसन में स्थिरता प्राप्त कर लेने पर आप प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ कर सकते हैं। यदि आप एक बार में एक ही आसन पर तीन घण्टे तक लगातार बैठ सकें, तो आपको आसन -जय प्राप्त हो चुकी । यदि आधा घण्टा से एक घण्टा तक भी एक आसन में बैठ सकते हैं, तो प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। प्राणायाम के अभ्यास के बिना आप आध्यात्मिक उन्नति शायद ही कर सकें।

व्यक्ति के सम्बन्ध में प्राण व्यष्टि है। समस्त ब्रह्माण्डीय प्राण का योग हिरण्यगर्भ है जो ज्योतिर्मय अण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। हिरण्यगर्भ समष्टि प्राण है। दियासलाई में एक सलाई व्यष्टि है। दियासलाई की पूरी डिबिया समष्टि है। एक आम्रवृक्ष व्यष्टि है। समूचा आम्र-कुंज समष्टि है। शरीर में जो शक्ति है, वह प्राण है। फेफड़े की गति पर नियन्त्रण ला कर हम प्राण को वश में कर सकते हैं जो हमारे अन्दर स्पन्दित हो रहा है। प्राण के नियन्त्रण से मन सुगमतया नियन्त्रित हो जायेगा; क्योंकि मन प्राण के साथ वैसे ही बँधा हुआ है जिस तरह पक्षी सूत्र से बँधा रहता है। किसी खम्भे से सूत्र के सहारे बँधा हुआ पक्षी इधर-उधर उड़ कर अन्ततः उस खम्भे के पास ही विश्राम के लिए आता है। उसी तरह मन रूपी पक्षी इधर-उधर विचरण करने के पश्चात्, विभिन्न वैषयिक पदार्थों में भ्रमण करने के पश्चात्, सुषुप्ति में प्राण में ही विश्राम प्राप्त करता है।

२. प्राणायाम

(गीता के अनुसार)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।

"दूसरे योगी जन प्राण को अपान में तथा अन्य कोई-कोई अपान को प्राण में होम करते हैं तथा अन्य योगी जन प्राण एवं अपान की गति को रोक कर प्राणायाम में परायण रहते हैं" (४/२९) ।

प्राणायाम बहुमूल्य यज्ञ है। कुछ लोग पूरक-प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग रेचक का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग कुम्भक का अभ्यास करते हैं। वे नासिका तथा मुँह से बहिर्गामी तथा अन्तर्गामी प्राण की गति को रोके रखते हैं।

३. प्राणायाम

(श्री शंकराचार्य के अनुसार)

चित्तादि समस्त भावों में ब्रह्म-रूप से ही भावना करने से सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है। वही प्राणायाम कहलाता है।

प्रपंच का निषेध करना रेचक-प्राणायाम है और 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी जो वृत्ति है, वह पूरक-प्राणायाम कहलाती है।

फिर उस (ब्रह्माकार) वृत्ति की निश्चलता ही कुम्भक प्राणायाम है। जाग्रत पुरुषों के लिए यही क्रम है, अज्ञानियों के लिए घ्राणपीडन ही प्राणायाम है (अपरोक्षानुभूति : ११८-१२०) ।

४. प्राणायाम

(योगी भुशुण्ड के अनुसार)

भुशुण्ड श्री वसिष्ठ जी से कहते हैं— "इडा और पिंगला नाम की दो नाडियाँ इस पंच-भौतिक मांसमय देह-रूपी घर में स्थित हृदय-कमल में रहती हैं। उसमें ऊर्ध्वगमन और अधोगमन—ये जो दो प्रकार के दो वायु प्रसृत होते हैं, वे दोनों वायु प्राण एवं अपान नाम से प्रसिद्ध हैं। मैं उनकी गति का सदा अनुसरण करता हुआ स्थित रहता हूँ। उनका स्वरूप सदा शीतल और उष्ण रहता है एवं वे दोनों निरन्तर शरीर के भीतर आकाश-मार्ग की यात्रा करते रहते हैं। वे श्रम-रहित हैं तथा हृदयाकाश के सूर्य और चन्द्रमा हैं। उन प्राण तथा अपान नामक वायुओं की जो शरीर में सदा संचरण करते हैं तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में सदा समान रूप हैं—गति का अनुसरण करते हुए मेरे दिन सुषुप्ति-अवस्था में स्थित मनुष्य की भाँति व्यतीत हो रहे हैं। एक हजार अंशों में विभक्त कमल तन्तु के लवमात्र की अपेक्षा भी अत्यन्त दुर्लक्ष्य ये नाड़ियाँ हैं, अतः उनमें विद्यमान इन प्राण और अपान—दोनों वायुओं की भी गति दुर्बोध है। हृदय आदि स्थानों में निरन्तर विचरण करने वाले प्राण और अपान वायुओं की गति के तत्त्व को जान कर उसका अनुसरण करने वाला प्रसन्नचित्त पुरुष जन्म-मरण के पाश से छूट कर सदा के लिए मुक्त हो जाता है। वह इस संसार में लौट कर नहीं आता।

"अब प्राण के विषय में श्रवण कीजिए। इस प्राण में स्पन्दन-शक्ति तथा निरन्तर गति-क्रिया रहती हैं। यह प्राण बाह्य एवं अन्तर सर्वांगों से परिपूर्ण देह के ऊपर के स्थान में (हृदय- देश में) स्थित रहता अपान वायु अपान वायु । में भी निरन्तर स्पन्दन-शक्ति तथा सतत गति रहती है। यह भी बाह्य एवं आन्तर समस्त अंगों से परिपूर्ण शरीर में नीचे के स्थान में (नाभि- देश में) स्थित रहता है। किसी प्रकार के यत्न के बिना प्राणों की हृदय-कमल • कोश से होने वाली जो स्वाभाविक बहिर्मुखता है, उसे 'रेचक' कहते है। बारह अंगुल- पर्यन्त बाह्य प्रदेश की ओर नीचे गये। हुए प्राणों का लौट कर भीतर प्रवेश करते समय जो शरीर के अंगों के साथ स्पर्श होता है, उसे 'पूरक' कहते हैं। बाह्य प्रदेश से शरीर के भीतर की ओर अपान के प्रवेश करने पर यत्न के बिना शरीर की पूर्ति करने वाला जो यह स्पर्श होता है, उसको 'पूरक' (अन्तः पूरक) कहते हैं। अपान वायु के शान्त हो जाने पर जब तक हृदय में प्राण वायु का अभ्युदय नहीं होता, तब तक वह वायु की कुम्भकावस्था रहती है, जिसका योगी अनुभव करते हैं। इसी को 'आभ्यन्तर कुम्भक' कहते हैं। बाह्योन्मुखी वायु की जो नासिकाग्र- पर्यन्त गति है, वह बाह्य पूरक है। नासिका के अग्रभाग से भी निकल कर बारह अंगुल-पर्यन्त जो प्राण वायु की गति है, उसे भी बाह्य पूरक कहते हैं। बाहर प्राण वायु के अस्तंगत होने पर जब तक अपान वायु का उद्गम नहीं होता, तब तक एक रूप से अवस्थित पूर्ण बाह्य कुम्भक रहता है, ऐसा कहते हैं। अपान वायु के उदय के (प्रस्पन्द के) बिना जो वायु की अन्तर्मुखता रहती है, वह बाह्य रेचक कहलाता है। उपासित हुआ वह उपासक को मुक्ति प्रदान करता है। प्राण और अपान वायु के स्वभावभूत ये जो बाह्य और आभ्यन्तर कुम्भकादि प्राणायाम हैं, उनका भली प्रकार तत्त्व-रहस्य जान कर निरन्तर उपासना करने वाला पुरुष पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता।

“ये देह-वायु के स्वभावभूत बाह्य एवं आन्तर रेचक आदि के भेद से आठ प्रकार के प्राणायाम हैं, इनका रात-दिन निरन्तर अनुध्यान करने से पुरुष की अवश्य मुक्ति हो जाती है। इन प्राणायामों का सभी अवस्थाओं में अभ्यास करने पर स्वभावतः अति-चपल ये वायु समय आने पर निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने वाले पुरुष का मन विषयाकार वृत्तियों के होने पर भी बाह्य विषयों में रमण नहीं करता। बैठते, चलते, सोते और जागते सदा-सर्वदा पुरुष यदि प्राणायाम का अभ्यास करें, तो वे कभी बन्धन को प्राप्त ही न होंगे।

"हृदय-कमल से प्राण का अभ्युदय होता है और बाहर बारह अंगुल - पर्यन्त प्रदेश में यह प्राण विलीन हो कर रहता है। बाह्य बारह अंगुल की चरम सीमा से अपान का उदय होता है और हृदय-प्रदेश में स्थित कमल में उसकी गति अस्त हो जाती है। चन्द्रमा-रूप अपान वायु शरीर को बाहर से पुष्ट करता है और सूर्य- -रूप प्राण वायु इस शरीर को भीतर से परिपक्व कर देता है। अपान-रूप चन्द्रमा की कला का प्राण-रूपी सूर्य के साथ आभ्यन्तर कुम्भक के समय जिस हृदयस्थ ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, उस ब्रह्मपद को प्राप्त कर पुरुष पुनः शोक को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार प्राण-रूपी सूर्य की किरण का अपान रूपी चन्द्रमा के साथ बाह्य कुम्भक के समय जिस बाह्य प्रदेश-स्थित ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, उस ब्रह्मपद को प्राप्त कर मनुष्य पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता । प्राण वायु के विलीन हो जाने पर और अपान वायु के उदय के पूर्व बाह्य कुम्भक का चिर काल तक अभ्यास करने से योगी शोक से रहित हो जाता है। जो प्राण-विलय का और जो अपान-विनाश का समीप और अन्त में रह कर प्रकाशक है तथा जो प्राण और अपान के अन्दर रहता है, हम लोग उस चिदात्मा की उपासना करते हैं। जहाँ पर प्राण विलीन हो जाता है, जहाँ अपान भी अस्त हो जाता है तथा जहाँ प्राण और अपान—दोनों उत्पन्न भी नहीं होते, हम लोग उस चिदात्मा की उपासना करते हैं। उक्त विधि से प्राणोपासना द्वारा प्राप्त परम तत्त्व के साक्षात्कार से मैं समस्त शोकों से रहित आदि कारण परम पद को प्राप्त हो गया हूँ।”

५. श्वास- नियन्त्रण

प्रथम आवश्यक पग है आसन पर अधिकार अथवा शरीर पर नियन्त्रण प्राप्त करना। आगामी अभ्यास प्राणायाम है। प्राणायाम के सफल अभ्यास के लिए ठीक आसन अपरिहार्य रूप से आवश्यक है। कोई भी सहज सुखद मुद्रा आसन है। वही आसन सर्वोत्तम है जो अधिकतम समय तक सुखद बना रहे। वक्षःस्थल, ग्रीवा तथा शिर एक सीधी रेखा में हों। आपको अपने शरीर को न तो आगे की ओर और न दोनों पार्श्वा वाम अथवा दक्षिण की ओर झुकाना चाहिए। आपको टेढ़ा हो कर नहीं बैठना चाहिए। आपको शरीर को गिरने नहीं देना चाहिए। आपको शरीर को न तो आगे की ओर, न पीछे की ओर ही झुकाना चाहिए। नियमित अभ्यास से आसनों पर स्वतः ही अधिकार प्राप्त हो जाता है। स्थूलकाय व्यक्तियों के लिए पद्मासन का अभ्यास दुष्कर प्रतीत होता है। ऐसे लोग सुखासन अथवा सिद्धासन में बैठ सकते हैं। आपको प्राणायाम के अभ्यास के लिए आसन पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त करने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। आप आसन के अभ्यास के साथ-ही-साथ प्राणायाम का भी अभ्यास कर सकते हैं। कालक्रम से आप दोनों में ही पूर्णता प्राप्त कर लेंगे। कुरसी पर सीधे बैठ कर भी प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।

भगवद्गीता में आपको आसन तथा मुद्रा का सुन्दर विवरण मिलेगा। "पवित्र स्थान पर अपने आसन को निश्चल रखें। यह आसन न तो अत्यधिक ऊँचा और न अत्यधिक नीचा हो। प्रथम कुशा, उसके ऊपर मृगाजिन और उसके ऊपर वस्त्र आच्छादन करे। इस प्रकार के आसन पर बैठ कर चित्त, इन्द्रिय तथा क्रिया के संयमपूर्वक योगी मन को एकाग्र कर अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु योगाभ्यास करे। वह यत्नपूर्वक शरीर, शिर fe far को समान तथा अचल भाव से रख कर स्थिर-भाव-सहित नासाग्र दर्शन करे, अन्य किसी दिशा में अवलोकन न करे" (गीता ६/११,१२,१३)।

प्राणायाम प्राण तथा चित्त की वृत्तियों का निरोध है। यह श्वास का नियमन है। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण है। प्राणायाम का उद्देश्य प्राण का नियन्त्रण है। चित्त की वृत्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए प्राणायाम श्वास के नियमन से आरम्भ किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्राणायाम श्वास के नियमन द्वारा चित्त की वृत्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण है। श्वास स्थूल प्राण की बाह्य अभिव्यक्ति है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास द्वारा श्वास लेने का ठीक स्वभाव बना लेना चाहिए। सामान्य सांसारिक लोगों में श्वास-क्रिया अनियमित रहती है।

यदि आप प्राण पर नियन्त्रण कर सकते हैं, तो आप ब्रह्माण्ड की सभी मानसिक तथा भौतिक शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण कर सकते हैं। योगी उस सर्वव्यापी अभिव्यक्त शक्ति पर भी नियन्त्रण कर सकता है जो चुम्बकत्व, विद्युत्, गुरुत्वाकर्षण, संलाग, स्नायु-प्रवाह, चित्तवृत्ति जैसी सभी शक्तियों का, वस्तुतः ब्रह्माण्ड की — भौतिक तथा मानसिक समस्त शक्तियों का म-स्रोत है। उद्गम-स्रोत है ।

यदि व्यक्ति प्राण को नियन्त्रित कर लेता है, तो मन भी नियन्त्रित हो जाता है। जिस व्यक्ति ने अपने मन को वश में कर लिया है, उसने अपने प्राण को भी वश में कर लिया है। यदि एक अवरुद्ध होता है, तो दूसरा भी अवरुद्ध हो जाता है। यदि व्यक्ति मन और प्राण- -दोनों को नियन्त्रित कर लेता है, तो वह जन्म तथा मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है और अमरत्व प्राप्त करता है। मन, प्राण तथा शुक्र के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति की शक्ति पर नियन्त्रण कर लेता है, तो मन तथा प्राण भी नियन्त्रित हो जाते हैं। जिसने अपनी वीर्य-शक्ति पर नियन्त्रण पा लिया है, उसने अपने प्राण तथा मन पर भी नियन्त्रण पा लिया है।

प्राणायाम का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को अच्छी सुधा, प्रता मनोहर रूप, सुशक्ति, साहस, उत्साह, उच्च कोटि का स्वास्थ्य, ओज, तेज और सुन्दर धारणा की प्राप्ति होती है। प्राणायाम पाश्चात्य देशवासियों के लिए भी उपयुक्त है।

योगी अपनी आयु को वर्षों की संख्या से नहीं, वरन श्वास की संख्या से मापता है। आप प्रत्येक श्वास के साथ वायुमण्डलीय वायु से भी कुछ परिमाण में प्राण शक्ति ग्रहण कर सकते हैं। व्यक्ति की प्राणिक क्षमता उसकी इस क्षमता से परिलक्षित होती है कि यथासम्भव गम्भीर प्रश्वास के अनन्तर वह श्वास द्वारा कितनी अधिक मात्रा में वायु अन्दर ग्रहण कर सकता है। व्यक्ति एक मिनट में पन्दरह श्वासें लेता है। श्वास का कुल योग प्रतिदिन २१,६०० बार है।

६. प्राणायाम के प्रकार

"बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म- यह प्राणायाम बाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति तीन प्रकार का होता है; देश, काल और संख्या से देखा हुआ (मापा हुआ) लम्बा और हलका होता है" (योगसूत्र २/ ५०)।

श्वास को बाहर निकाल कर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव करना रेचक प्राणायाम है। यह प्राणायाम का प्रथम प्रकार है। श्वास अन्दर खींच कर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव द्वितीय प्रकार का प्राणायामः है। इसे पूरक कहते हैं। स्वास-प्रश्वास दोनों गतियों के अभाव से प्राण को एकदम जहाँ-का-तहाँ रोक देना कुम्भक प्राणायाम है, यह तृतीय प्रकार का प्राणायाम है। कुम्भक आयु को बढ़ाता है। इससे आध्यात्मिक शक्ति, वीर्य तथा बल की वृद्धि होती है। यदि आप श्वास को एक मिनट के लिए रोक दें, तो इससे आपकी आयु में एक मिनट की वृद्धि हो जायेगी। योगी जन प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में ले जा कर उसे वहीं स्थिर कर मृत्यु के स्वामी यमराज को पराजित

कर देते हैं और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। कुम्भक के अभ्यास द्वारा चांगदेव एक हजार चार सौ वर्ष तक जीवित रहे। तीनों प्रकार के प्राणायाम अर्थात् रेचक, पूरक तथा कुम्भक को देश, काल तथा संख्या से मापते हैं। देश से यहाँ तात्पर्य है शरीर के बाहर या भीतर श्वास की लम्बाई या चौड़ाई तथा वह विशेष अंग जहाँ प्राण केन्द्रित किया जाये।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में प्रश्वास की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार श्वास में भी विभेद होता है। जिस तत्त्व की प्रधानता होती है, उसी के अनुसार श्वास की लम्बाई में भी भिन्नता होती है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु अथवा आकाश के उदय के समय श्वास की लम्बाई क्रमशः १२, १६, ४, ८, ० अंगुल की होती है। यह लम्बाई प्रश्वास के समय बाह्यतः तथा श्वास के समय अन्तरतः होती है।

मात्रा के द्वारा समय का हिसाब लगाया जाता है। मात्रा का अर्थ है समय की इकाई। एक सेकेंड को मात्रा मानते हैं। समय से यह अभिप्राय है कि प्राण को किसी विशेष केन्द्र में कब तक स्थिर रखा जाये।

संख्या से सम्बन्ध है प्राणायाम की संख्या। योगाभ्यासी को शनैः-शनैः एक बैठक में प्राणायाम की संख्या ८० तक बढ़ा ले जानी चाहिए। वह प्रातः, दोपहर, सायं तथा अर्धरात्रि अथवा नौ बजे रात्रि को चार बार प्राणायाम के लिए बैठे तथा कुल ३२० प्राणायाम करे। प्राणायाम का फल है उद्घात अथवा कुण्डलिनी का जागरण। प्राणायाम का मुख्य लक्ष्य है प्राण को अपान से संयोजित करना तथा संयुक्त प्राण-अपान को धीरे-धीरे शिर की ओर ऊपर ले जाना।

कुण्डलिनी ही सारी सिद्धियों की मूल है। अभ्यास के समयानुसार प्राणायाम सूक्ष्म या दीर्घ होता है। जिस प्रकार तप्त लोहादि पर डाला हुआ जल एक-साथ संकुचित हो कर सूख जाता है, इसी प्रकार कुम्भक- प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास — दोनों की गति का एक-साथ अभाव हो जाता है।

वाचस्पति का कहना है ३६ मात्राओं का प्रथम उद्घात होता है। यह मृदु है। इससे द्विगुणित मात्राओं का द्वितीय उद्घात होता है जो मध्य है। प्रथम का त्रिगुणित तृतीय उद्घात होता है। यह तीव्र है। यह संख्या परिदृष्ट प्राणायाम है।

रेचक-प्राणायाम की लम्बाई नासिकाग्र से १२ अंगुल - पर्यन्त होती है। इसकी जाँच रेचक-प्राणायाम के समय नासिका के सामने रूई रख कर की जाती है। पूरक-प्राणायाम की लम्बाई ऊपर की ओर मस्तिष्क से ले कर नीचे की ओर पाद-तल तक है। इसकी जाँच अन्दर श्वास खींचने में श्वास का स्पर्श चीटीं-जैसा प्रतीत होने से की जाती है। रेचक और पूरक — दोनों का स्थान कुम्भक का स्थान हो सकता है; क्योंकि श्वास की क्रिया शरीर के अन्दर अथवा उससे बाहर कहीं भी रोकी जा सकती है। इसकी जाँच रेचक और पूरक के सम्बन्ध में उल्लिखित दोनों लक्षणों के अभाव से की जा सकती है अर्थात् कुम्भक में न बाहर कुछ हिलता है और न अन्दर स्पर्श होता है।

काल, स्थान तथा संख्या के अनुसार तीनों प्रकार के प्राणायामों का वर्णन ऐच्छिक है। ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए कि इन तीनों का अभ्यास एक-साथ होना चाहिए; क्योंकि बहुत-सी स्मृतियों में प्राणायाम के सन्दर्भ में केवल समय का ही वर्णन है।

बाहर- अन्दर के विषय में फेंकने वाला अर्थात् आलोचना करने वाला चौथा प्राणायाम है :

"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः " (योगसूत्र : २/५१) ।

योगसूत्र के पचासवें सूत्र में वर्णित तीन प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास उद्‌घात के व्यक्त होने तक ही करना चाहिए। इसके बाद चतुर्थ प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। इस प्राणायाम में प्राण को विभिन्न चक्रों में केन्द्रीभूत करके उसे शनैः-शनैः क्रमशः एक-एक चरण करके अन्तिम चक्र सहस्रार चक्र में ले जाते हैं जहाँ प्राण के जाने से समाधि लग जाती है। यह आभ्यन्तरिक है। बाह्य में तत्त्व की प्रधानता के अनुसार श्वास की लम्बाई का विचार रखा जाता है। प्राण को अन्दर या बाहर कहीं भी स्थिर किया जा सकता है।

प्रारम्भिक तीन प्रकार के प्राणायामों पर क्रमशः प्रभुत्व प्राप्त कर लेने पर चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का आरम्भ होता है। तीसरे प्रकार के प्राणायाम में विषय का अवधारण नहीं किया जा सकता। एकदम आरम्भ हो कर देश, काल तथा संख्या से परिदृष्ट दीर्घ या सूक्ष्म हो जाता है। चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास के विषय को अवधारण किया जाता है। उत्तरोत्तर क्रम से विभिन्न भूमियों को जय करते हैं। जहाँ तृतीय प्राणायाम एकदम आरम्भ होता है, वहाँ चतुर्थ प्राणायाम को एक ही प्रयत्न में नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे अभ्यास किया जाता है, वैसे-वैसे ही उत्तरोत्तर भूमियों की जय प्राप्त होती है। एक भूमि के जय के पश्चात् दूसरी भूमि का अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास उत्तरोत्तर चालू रहता है, तीसरा प्राणायाम तो (बाह्य और आभ्यन्तर) विषय के आलोचन बिना ही होता है और एकदम ही आरम्भ हो जाता है। चौथे प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास के बाह्य और आभ्यन्तर विषय को अवधारण करके क्रमानुसार भूमियों के जय से होता है। यही इसकी विशेषता है। देश, काल और संख्या का परिदृष्ट इस प्रकार के प्राणायाम में भी प्रयुक्त होता है। उन्नति की प्रत्येक भूमि में विशेष सिद्धियाँ स्वयं ही विकसित होती हैं।

७. तीन प्रकार के प्राणायाम

तीन प्रकार के प्राणायाम हैं अर्थात् अधम, मध्यम तथा उत्तम। अधम प्राणायाम १२ मात्रा का, मध्यम २४ मात्रा का तथा उत्तम ३२ मात्रा का होता है। इस मात्रा में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के बीच १:४:२ का अनुपात होना चाहिए। श्वास भीतर खींचना पूरक है, श्वास को बाहर छोड़ना रेचक है तथा श्वास को रोके रखना कुम्भक है। यदि आप १२ मात्रा तक श्वास खींचते हैं, तो आपको ४८ मात्रा तक कुम्भक करना चाहिए और रेचक के लिए २४ मात्रा का समय होना चाहिए। यह अधम प्राणायाम के लिए है। इसी प्रकार अन्य दो प्रकारों को भी समझ लेना चाहिए। सर्वप्रथम एक महीने तक अधम प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। तब तीन महीने तक मध्यम का अभ्यास करना चाहिए। तदुपरान्त उत्तम का अभ्यास करना चाहिए।

आसन पर बैठते ही गुरु तथा गणेश को नमस्कार कीजिए। प्रातः सबेरे ४ बजे, १० बजे दिन, सायं ५ बजे तथा रात्रि के १० अथवा १२ बजे अभ्यास के लिए उपयुक्त समय हैं। अभ्यास में प्रगति करने पर आपको ३२० प्राणायाम नित्य-प्रति करने चाहिए।

सगर्भ-प्राणायाम वह है जिसमें गायत्री अथवा ॐ में से किसी एक मन्त्र का मानसिक जप किया जाये। अगर्भ-प्राणायाम में जप नहीं करते। सगर्भ-प्राणायाम अगर्भ-प्राणायाम से सौ गुणा अधिक शक्तिशाली है। साधक के प्रयत्न की उग्रता पर ही प्राणायाम की सिद्धि अवलम्बित है। परम असाह, साहस तथा दृढता वाला अभ्यासी छह महीने में सिद्धि प्राप्त कर सकता है; परन्तु तन्द्रा एवं आलस्य से युक्त लापरवाह साधक आठ या दश वर्षों में भी कुछ उन्नति नहीं कर पाता। आगे बढ़ते जाइए। धैर्य, श्रद्धा, विश्वास, आशा, रुचि तथा सावधानीपूर्वक अध्यवसाय कीजिए। आप अवश्य ही सफल होंगे। कदापि निराश न होइए।

८. वेदान्तिक कुम्भक

विक्षेप-रहित हो कर शान्त मन साधक को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। श्वास-प्रश्वास को बन्द कर लेना चाहिए। साधक को एकमात्र ब्रह्म पर ही निर्भर होना चाहिए। वही जीवन का परम लक्ष्य है। सारी बाह्य वस्तुओं का परित्याग करना ही रेचक कहा गया है। शास्त्रों के आध्यात्मिक ज्ञान को आत्मसात् करना ही पूरक है। ऐसे ज्ञान को अपने में बनाये रखना ही कुम्भक है। चित्त को इस तरह अभ्यास में लगाये रखने वाला व्यक्ति मुक्त है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। कुम्भक के द्वारा ही मन को सदा ऊपर उठाना चाहिए। कुम्भक द्वारा ही मन को ज्ञान से पूरित करना चाहिए। कुम्भक द्वारा ही कुम्भक पर दृढ़ अधिकार किया जाता है। इसी में परम शिव का निवास है। सर्वप्रथम इस तरह के अभ्यास से ब्रह्म-ग्रन्थि में एक छिद्र अथवा मार्ग का प्रादुर्भाव होता है। ब्रह्म-ग्रन्थि का भेदन कर साधक विष्णु-ग्रन्थि का भेदन करता है, तब वह रुद्र-ग्रन्थि का भेदन करता है। तब योगी अनेक जन्मों के पुण्य से, गुरु तथा देवताओं की कृपा से और योगाभ्यास के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

९. नाडीशोधन प्राणायाम

यदि नाड़ियाँ मल से पूर्ण हैं, तो वायु उनमें प्रवेश नहीं कर सकती। अतः सर्वप्रथम उन्हें शुद्ध बनाना चाहिए और तदनन्तर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। दो क्रियाओं अर्थात् समान तथा निर्मान द्वारा नाही की शुद्धि की जाती है। बीज-मन्त्र के द्वारा समानु किया जाता है तथा निर्मा के लिए षट्कर्म करते हैं।

१. पद्मासन में बैठ जाइए। वायु के बीजाक्षर 'ये' पर ध्यान कीजिए। वह धूम रंग का है। बायीं नासिका से श्वास लीजिए। १६ बार बीजाक्षर का जप कीजिए। यही पूरक है। ६४ बार बीजाक्षर का जप करने तक श्वास को रोके रखिए। यही कुम्भक है। अब ३२ बार बीजाक्षर का जप करते समय तक नासिका से बहुत धीरे-धीरे श्वास छोड़िए।

२. नाभि अप्रि-तत्त्व का स्थान है। इस अग्नि तत्व पर ध्यान कीजिए। दाहिनी नासिका से १६ बार अप्रि-बीज 'र' का जप करते हुए श्वास खींचिए। श्वास को ६४ बार बीज-मन्त्र जप तक रोके रखिए। तब ३२ बार मानसिक जप करते हुए बायीं नासिका से धीरे-धीरे रेचक कीजिए।

३. नासिकाग्र पर अपनी दृष्टि स्थिर कीजिए। बीज 'ठ' का जप करते हुए बायीं नासिका से श्वास खींचिए। ६४ बार 'ठ' के जप तक श्वास रोके रखिए। ऐसी कल्पना कीजिए कि चन्द्रमा से स्रवित अमृत शरीर की सभी नाड़ियों में प्रवाहित हो कर उन्हें परिशुद्ध बना रहा है। तब धीरे-धीरे दाहिनी नासिका से पृथ्वी-बीज 'ल' का जप ३२ बार करते हुए श्वास निकाल दीजिए।

अपने सामान्य आसन में दृढ़तापूर्वक बैठ कर उपर्युक्त तीन प्रकार के प्राणायामों के अभ्यास से नाड़ियाँ भली-भाँति शुद्ध हो जाती हैं।

१०. प्राणायाम-काल में मन्त्र

ईश्वर-गीता में प्राणायाम करते समय जप करने के लिए निर्धारित किया गया है- "साधक कुम्भक के समय सप्त व्याहृतियों के साथ तीन बार गायत्री का जप करे और अन्त में शिरस करे जिसके आदि और अन्त में प्रणव कहा जाता है। इसी को प्राणायाम कहते हैं।"

योगी याज्ञवल्क्य का कहना है- "प्राण तथा अपान वायुओं को प्राणायाम द्वारा रोक कर ॐ का मात्रानुसार जप करना चाहिए।"

परमहंस संन्यासियों के लिए केवल प्रणव का जप ही पर्याप्त है। अन्य स्मृतियों ने यह कहा है कि पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय क्रमशः नाभि, हृदय तथा ललाट में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का ध्यान करे। परमहंसों के लिए केवल ब्रह्म पर ही ध्यान करने की व्यवस्था है। श्रुति का कहना है कि आत्म-संयमी संन्यासी प्रणव के द्वारा परब्रह्म पर ध्यान करे।

११. अभ्यास (१)

पद्मासन लगा कर बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। त्रिकुटी पर (दोनों भौंहों के बीच) ध्यान कीजिए। दाहिने हाथ के अँगूठे से नासिका -पुट को बन्द कर लीजिए। बायीं नासिका से धीरे-धीरे जितनी देर सुखपूर्वक हो सके, श्वास लीजिए। तब उसी नासिका-पुट से धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिए। बारह बार ऐसा कीजिए। यह एक आवृत्ति है।

दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका की सहायता से बायें नासिका-पुट को बन्द कर दाहिने नासिका पुट से श्वास लीजिए तथा उसी नासिका-पुट से धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। बारह बार ऐसा कीजिए। यह एक आवृत्ति है। रेचक तथा पूरक करते समय जरा भी शब्द न निकालिए। अभ्यास के समय अपने इष्ट-मन्त्र का जप कीजिए । अभ्यास के दूसरे सप्ताह में दो आवृत्ति तथा तीसरे सप्ताह में तीन आवृत्ति कीजिए। एक आवृत्ति पूर्ण होने पर दो मिनट तक विश्राम कर लीजिए। यदि आप एक आवृत्ति के बाद सहज रूप से कुछ श्वास लेंगे, तो इससे आपको पर्याप्त विश्राम प्राप्त होगा तथा दूसरी आवृत्ति के लिए अश्रान्त हो जायेंगे। इस अभ्यास में कुम्भक नहीं है। अपनी शक्ति तथा क्षमता के अनुसार आप आवृत्तियों की संख्या बढ़ा सकते हैं।

१२. अभ्यास (२)

दोनों नासिका-पुटों से धीरे-धीरे हलके से श्वास अन्दर खींचिए। श्वास को न रोकिए। तब धीरे-धीरे श्वास को बाहर छोड़िए। इसे बारह बार कीजिए। यह एक आवृत्ति है। अपनी क्षमता, शक्ति तथा अपने अधीन समय के अनुसार आप दो या तीन आवृत्तियाँ कर सकते हैं।

१३. अभ्यास (३)

अपने आसन पर बैठिए। दाहिने नासिका-पुट को दाहिने हाथ के अँगूठे से बन्द कर लीजिए। अब बायें नासिका पुट से धीरे-धीरे श्वास खींचिए। बायें नासिका पुट को अपने दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका से बन्द कीजिए और दाहिने अँगूठे को हटा कर दाहिने नासिका पुट से धीरे-धीरे श्वास छोड़िए।

तब दाहिने नासिका-पुट से जितनी देर सुखपूर्वक हो सके, वायु को 'खींचिए। तब दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका को हटा कर बायें नासिका-पुट से श्वास छोड़िए। इस प्राणायाम में कुम्भक नहीं है। यह क्रिया बारह बार कीजिए। यह एक आवृत्ति है।

१४. अभ्यास (४)

ध्यान कीजिए कि परम ज्योति एकाक्षर प्रणव ॐ इन तीन अक्षरों अ, उ तथा म का मूल है। इडा अथवा बायें नासिकापुट से वायु को १६ मात्रा (१६ सेकेंड) तक भीतर खींचिए। इस समय 'अ' पर ध्यान कीजिए। ६४ मात्रा (सेकेंड) तक कुम्भक करते हुए 'उ' पर ध्यान कीजिए। ३२ मात्रा (सेकेंड) तक दाहिनी नासिका से श्वास छोड़िए। इस समय 'म' पर ध्यान कीजिए। उपर्युक्त क्रम से इसका बारम्बार अभ्यास कीजिए। दो या तीन बार से आरम्भ कर इसे २० या ३० बार अपनी शक्ति के अनुसार कीजिए। प्रारम्भ में १ ४ २ का अनुपात रखिए। शनैः-शनैः १६:६४:३२ के अनुपात तक बढ़ा ले जाइए।

१५. गहरी श्वास का अभ्यास

प्रत्येक गहरी श्वास लेने में नासिका द्वारा अधिक-से-अधिक मात्रा में वायु पेट में भरी जाती है और नासिका द्वारा ही गहरे तथा स्थिर प्रश्वास से वायु निकाल दी जाती है।

जितना हो सके, धीरे-धीरे श्वास अन्दर खींचिए। धीरे-धीरे जितना हो सके, प्रश्वास बाहर निकालिए। **पूरक के समय निम्नांकित नियमों का पालन कीजिए:**

१. खड़े हो जाइए। हाथों को कमर पर रखिए। कुहनियाँ बाहर की ओर रहें, बलपूर्वक उलटी न रखें। आरामपूर्वक खड़े रहिए ।

२. छाती को सीधे ऊपर की तरफ ऊँचा कीजिए। हाथों से नितम्ब - अस्थियों को नीचे की ओर दबाये रखिए। ऐसा करने से निर्वात स्थान का निर्माण होगा। फल-स्वरूप वायु स्वतः ही भीतर प्रवेश करेगी।

३. नासारन्ध्रों को खुला रखिए। नाक को चूषण-पम्प की तरह प्रयोग न कीजिए। नाक श्वास-प्रश्वास के वायु के आने-जाने का निष्क्रिय मार्ग रहे। श्वास-प्रश्वास के समय किसी तरह का शब्द न कीजिए। याद रखिए कि ठीक श्वास-क्रिया में शब्द नहीं होता।

४. धड़ का सारा ऊपरी भाग बिलकुल फैला कर रखिए।

५. छाती के ऊपरी भाग को चापाकार झुका कर तंग न बनाइए। उदर को सहज रूप से ढीला रखिए।

६. शिर को अधिक पीछे की ओर न मोड़िए। उदर को भीतर की ओर न खीचिए। कन्धों को बलपूर्वक पीछे की ओर न झुकाइए। कन्धों को ऊपर उठाइए।

श्वास छोड़ते समय निम्नांकित नियमों का सावधानीपूर्वक पालन कीजिए:

१. श्वास निकालते समय पसलियों और धड़ का सारा ऊपरी भाग शनैः-शनैः स्वतः सिकुड़ता जाये ।

२. नीचे की पसलियाँ तथा उदर को ऊपर की ओर धीरे-धीरे खींचते जाइए।

३. शरीर को अधिक आगे न झुकाइए । छाती को चापाकार न होने दीजिए। शिर, ग्रीवा तथा धड़ को एक सीध में रखिए। छाती को सिकोड़िए । मुँह से श्वास को न निकालिए। बिना किसी शब्द के धीरे-धीरे श्वास छोड़िए।

४. श्वास लेने वाली पेशियों को जरा-सा ढीला करते ही प्रश्वास स्वतः होने लगता है। छाती अपने ही भार से स्वतः बैठने लगती है तथा नासिका से वायु को निष्कासित करती है।

५. प्रारम्भ में श्वास लेने के अनन्तर कुम्भक न कीजिए। श्वास लेने के बाद तुरन्त श्वास निकालना आरम्भ कर दीजिए। अपने अभ्यास में पर्याप्त आगे बढ़ जाने पर आप अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार अपने श्वास को पाँच सेकेंड से एक मिनट तक रोक सकते हैं।

६. तीन गहरे श्वास-प्रश्वासों के अनन्तर आप थोड़ा आराम कर लें। कतिपय सामान्य श्वास ले कर श्वसन-विराम लें। तब दूसरी आवृत्ति आरम्भ करें। विराम के समय हाथों को कमर पर रख शरीर ढीला रखिए। साधक की शक्ति के अनुसार आवृत्तियों की संख्या निर्धारित की जा सकती हैं। तीन या चार आवृत्तियाँ कीजिए तथा प्रति सप्ताह एक आवृत्ति बढ़ाते जाइए। गम्भीर श्वास लेना प्राणायाम का ही एक प्रकार है।

१६. कपालभाति

कपाल संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ है ललाट। भाति का अर्थ है। चमकना । कपालभाति उस अभ्यास को कहते हैं जिससे कपाल चमकने लगे। यह क्रिया कपाल को शुद्ध बनाती । इसे षट्कर्मों में से एक मानते हैं।

पद्मासन पर बैठिए। हाथों को घुटनों पर रखिए। आँखें बन्द कर लीजिए। द्रुत गति से पूरक रेचक कीजिए। इसका अभ्यास उग्रतापूर्वक करना चाहिए। इससे प्रचुर मात्रा में स्वेद निकलेगा। यह बहुत ही लाभदायक अभ्यास है। जो कपालभाति अच्छी तरह कर सकते हैं, वे भस्त्रिका सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। इस प्राणायाम में कुम्भक नहीं है। रेचक इस प्राणायाम का महत्त्वपूर्ण अंग है। पूरक मृदु, मन्द तथा दीर्घ होता है; किन्तु रेचक को उदर की मांसपेशियों को पीछे की तरफ खींचते हुए शीघ्रता तथा बलपूर्वक करना चाहिए। पूरक करते समय उदर की मांसपेशियों को ढीला छोड़ दीजिए। कुछ लोग कपालभाति करते समय स्वभावतः ही मेरुदण्ड को मोड़ तथा शिर को झुका लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। शिर तथा घड एक सीध में होने चाहिए। भस्त्रिका की तरह श्वास एक के बाद एक सहसा निकलता रहता है। प्रारम्भ में आप प्रति क्षण में एक रेचक कर सकते हैं। धीरे-धीरे आप एक क्षण में दो रेचक कर सकते हैं। आरम्भावस्था में प्रातः समय केवल दश रेचकों की एक आवृत्ति कर लीजिए। दूसरे सप्ताह सायंकाल को भी एक आवृत्ति कर लीजिए। तीसरे सप्ताह दो आवृत्ति प्रातः तथा दो आवृत्ति सायं को करें। प्रति सप्ताह हर आवृत्ति में शनैः-शनैः तथा सावधानीपूर्वक दश रेचक बढ़ाते जाइए और इस प्रकार बढ़ाते हुए हर आवृत्ति २० रेचक तक ले जाइए।

यह क्रिया श्वास-प्रणाली तथा नासिका छिद्रों को शुद्ध करती है। श्वास नलिका का संकुचन इससे दूर होता है। फल-स्वरूप दमा में आराम मिलता है तथा कालान्तर में वह ठीक भी हो जाता है। फेफड़ों के अग्र भाग तक ओषजन (आक्सीजन) पहुँचता है जिससे यक्ष्मा उत्पादक कीटाणुओं के लिए उपयुक्त प्रजनन स्थान नहीं मिल पाता। इस अभ्यास के द्वारा क्षय-रोग अच्छा हो जाता है। फेफड़े पर्याप्त विकसित हो जाते हैं। प्रांगार द्विजारेय (कार्बन डाई आक्साइड) बहुत मात्रा में निकल जाता है। रुधिर का मल बाहर आ जाता है। शरीर के कोशाणु तथा

ऊतक बहुत बड़ी मात्रा में ओषजन आत्मसात् करते हैं। साधक का स्वास्थ्य सुन्दर बना रहता है। हृदय ठीक-ठीक काम करता है। रुधिर तथा श्वास-प्रणालियाँ यथेष्ट मात्रा में पुष्टता प्राप्त करती हैं।

१७. बाह्य कुम्भक

बायीं नासिका से तीन बार ॐ का उच्चारण करते हुए श्वास लीजिए। ६ बार ॐ का उच्चारण करते हुए दक्षिण नासिका से तुरन्त बिना कुम्भक किये ही श्वास को छोड़ दीजिए। १२ बार ॐ का उच्चारण करते हुए श्वास को बाहर रोके रखिए। तब श्वास को दाहिनी नासिका से खींचिए। बायीं से छोड़िए तथा उसे पूर्ववत् बाहर रोके रखिए। रेचक, पूरक तथा कुम्भक में ॐ की पहले वाली मात्राएँ बनाये रखिए। प्रातः छह बार तथा सायंकाल छह बार कीजिए। धीरे-धीरे आवृत्तियों की संख्या तथा कुम्भक का समय बढ़ाते जाइए। थकावट न आने दीजिए।

१८. सुखपूर्वक प्राणायाम

अपने ध्यान कक्ष में इष्टदेवता के चित्र के समक्ष पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जाइए। दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नासिका -पुट को बन्द कर डालिए। बायें नासिका-पुट से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास लीजिए। दाहिने हाथ की कनिष्ठिका तथा अनामिका उँगलियों से बायें नासिका -पुट को बन्द कर दीजिए। जितनी देर सुखपूर्वक श्वास रोक सकें, रोके रखिए। तब अँगूठे को हटा कर दाहिने नासिका पुट से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। अब आधी क्रिया समाप्त हो गयी। तब दायें नासिका -पुट से श्वास खींचिए। पूर्ववत् श्वास को रोकिए तथा बायें नासिका पुट से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। इन छह क्रियाओं का एक प्राणायाम बनता है। बीस बार प्रातः तथा बीस बार सायं इसे कीजिए। शनैः-शनैः संख्या बढ़ाते जाइए। यह भाव रखिए कि सारे दैवी सम्पत—यथा करुणा, प्रेम, क्षमा, शान्ति, आनन्द इत्यादि — आपके शरीर में श्वास के साथ प्रवेश कर रहे हैं। तथा प्रश्वास के साथ काम, क्रोध, लोभ इत्यादि निष्कासित किये जा सकते है। । पूरक, रेचक तथा कुम्भक के समय ॐ अथवा गायत्री का मानसिक जप कीजिए। कठोर परिश्रमी साधक ८० प्रति बैठक के हिसाब से चार बैठकों में ३२० कुम्भक प्रतिदिन कर सकते हैं।

यह प्राणायाम सारे रोगों को दूर करता है, नाड़ियों को शुद्ध बनाता है, धारणा के समय मन को स्थिर करता है, पाचन शक्ति बढ़ाता है, जठराग्नि प्रदीप्त करता है, ब्रह्मचर्य पालन में सहायता देता है तथा मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत करता है। नांड़ियों की शुद्धि शीघ्र हो जाती है। आपमें आकाशगामिता की क्षमता आयेगी।

१९. कुण्डलिनी जागरण के लिए प्राणायाम

निम्नांकित अभ्यास को करते समय मूलाधार चक्र पर धारणा कीजिए। यह चक्र मेरुदण्ड के मूल में (गुदा के निकट) त्रिकोण के आकार का है। यही कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। दाहिने नासिका पुट को दाहिने हाथ के अंगूठे से बन्द कर डालिए। तीन बार ॐ का उच्चारण करते हुए बायें नासिका पुट से श्वास लीजिए। कल्पना कीजिए कि आप वायु-मण्डलीय वायु से प्राण खींच रहे हैं। तब आप दाहिने हाथ की कनिष्टिका तथा अनामिका उँगलियों से बायें नासिका पुट को बन्द कर डालिए। १२ बार ॐ का जप करते हुए श्वास को रोके रखिए। मेरुदण्ड के द्वारा प्राण-प्रवाह को नीचे मूलाधार चक्र की ओर ले जाइए। कल्पना कीजिए कि यह चेता-प्रवाह पद्म पर आघात पहुँचा कर कुण्डलिनी को जगा रहा है। तब ६ बार ॐ का जप करते हुए शनैः-शनैः दाहिने नासिका -पुट से श्वास

छोड़ दीजिए। उपर्युक्त प्रकार से दाहिनी नासिका द्वारा इसी क्रिया को कीजिए । एक ही समान मात्रा रखिए तथा कल्पना और भावना भी वैसी ही बनाये रखिए। इस प्राणायाम से कुण्डलिनी शीघ्र ही जग जायेगी। इसे प्रातः तीन बार तथा सायंकाल तीन बार कीजिए। अपनी शक्ति तथा क्षमता के अनुसार इसकी संख्या को सावधानीपूर्वक तथा शनैः-शनैः बढ़ाते जाइए। इस प्राणायाम में मूलाधार चक्र पर धारणा करना आवश्यक है। यदि धारणा गम्भीर है तथा प्राणायाम का अभ्यास नियमित रूप से किया जाता है, तो कुण्डलिनी शीघ्र ही जग जायेगी।

२०. ध्यान के समय प्राणायाम

यदि आप धारणा तथा ध्यान करेंगे, तो प्राणायाम स्वतः होने लगेगा। श्वास धीमा पड़ता जाता है। हम सब अनजाने ही इस प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करते हैं। जब आप कोई सनसनीदार कहानी पढ़ते है अथवा जब आप गणित का कोई प्रश्न हल करते हैं, तब आपका मन उस विषय में अत्यधिक लीन हो जाता है। यदि आप इस समय श्वास को देखें, तो उसे बहुत ही धीमा पायेंगे। जब आप सिनेमा या थियेटर में किसी दुःखान्त कहानी का अभिनय देखते हैं, जब आप किसी असाधारण दुःखद घटना के विषय में सुनते हैं अथवा कोई सुखप्रद समाचार प्राप्त करते हैं, जब आप आनन्द अथवा शोक के अश्रु बहाते हैं अथवा ठहाका मार कर हँसते हैं, तो आपका श्वास धीमा पड़ जाता है; प्राणायाम स्वतः होने लगता है। जो योगाभ्यासी शीर्षासन का अभ्यास करते हैं, उनका प्राणायाम स्वतः होने लगता है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि जब मन किसी विषय पर गम्भीरतापूर्वक एकाग्र हो, तब श्वास-क्रिया धीमी पड़ जाती है; प्राणायाम स्वयमेव होता है। मन तथा प्राण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण मन का ओवर-कोट है। यदि आप उन समयों में अपना ध्यान श्वास पर ले जायेंगे, तो यह अपनी सहजावस्था पुनः धारण कर लेगा। जो व्यक्ति जप, ध्यान अथवा ब्रह्म-विचार में गम्भीरतापूर्वक निमग्न रहते हैं, उनका प्राणायाम स्वतः ही होने लगता है।

प्राण, मन तथा वीर्य का एक सम्बन्ध है। यदि आप मन को वश में कर लें, तो प्राण तथा वीर्य स्वतः ही नियन्त्रित हो जायेंगे। यदि आप प्राण को वश में कर लें, तो मन तथा वीर्य स्वतः ही नियन्त्रित हो जायेंगे। यदि आप १२ वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहें, एक बूँद भी वीर्यपात न होने दें, तो मन तथा प्राण स्वतः ही वशीभूत हो जायेंगे। जिस तरह वायु तथा अग्नि में सम्बन्ध है, उसी तरह प्राण तथा मन में सम्बन्ध है, वायु अग्नि को प्रदीप्त करती है। प्राण भी मन को प्रदीप्त करता है। वायु न रहने पर ज्योति स्थिर हो जाती है। प्राण के न रहने पर मन भी स्थिर हो जाता है। हठयोगी प्राण को वशीभूत कर ब्रह्म को पहुँचते हैं। राजयोगी मन को वशीभूत कर ब्रह्मसाक्षात्कार करते हैं।

इस प्राणायाम में नासिकाओं को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप इसका अभ्यास बैठ-बैठे करना चाहते हैं, तो केवल आँखें मूँद लीजिए। शरीर को भूल जाइए तथा धारणा का अभ्यास कीजिए। यदि आप टहलते समय इसका अभ्यास करें, तो श्वास तथा प्रश्वास में वायु की गति का सूक्ष्म रूप से अनुभव करते रहिए।

२१. टहलते समय प्राणायाम

शिर ऊपर, कन्धों को पीछे तथा छाती को विकसित कर टहलिए । दोनों नासिकाओं से ३ बार ॐ का मानसिक जप करते हुए एक कदम पर एक जप के हिसाब से श्वास खींचिए। तब १२ ॐ के जप तक श्वास को रोके रखिए। तब ६ ॐ जप के साथ दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास छोड़िए ।

एक प्राणायाम के बाद १२ ॐ का जप करते हुए श्वास-क्रिया को आराम दीजिए। यदि प्रति पग के साथ ॐ का जप करने में कठिनाई हो, तो कदम की चिन्ता किये बिना ही ॐ का जप कीजिए।

टहलते समय कपालभाति भी कर सकते हैं। जिन्हें अधिक व्यस्त रहना पड़ता है, वे प्रातः तथा सायं भ्रमण के समय उपर्युक्त प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। आप एक पन्थ दो काज करेंगे। जब शीतल-मन्द समीर चल रहा हो, उस समय उन्मुक्त स्थान में भ्रमण करते समय प्राणायाम का अभ्यास बड़ा ही सुखद रहेगा। आप पर्याप्त मात्रा में शीघ्र ही स्फूर्ति तथा बल प्राप्त करेंगे। इस प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास कीजिए और इसके सुस्पष्ट, लाभकारी प्रभाव को अनुभव तथा प्राप्त कीजिए। जो ॐ का मानसिक अथवा उपाशु जप करते हुए जोरों से टहलते हैं, वे अप्रयास ही स्वाभाविक प्राणायाम का अभ्यास करते हैं।

२२. शवासन में प्राणायाम

पीठ के बल शिथिल हो कर, कम्बल के ऊपर लेट जाइए। हाथों को बगल में भूमि पर रखिए तथा पैरों को सीधे रखिए। एड़ियाँ सटी रहें; पर अँगूठे कुछ दूरी पर रहें। सारी मांसपेशियों तथा स्नायुओं को ढीला छोड़ दीजिए। जो बहुत दुर्बल हैं, वे भूमि अथवा चारपाई पर लेट कर इस प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। दोनों नासिका-पुटों से बिना किसी शब्द के धीरे-धीरे श्वास खींचिए। जितनी देर सुखपूर्वक हो सके, उसे रोकिए और तब दोनों नासिका-पुटों से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालिए। इस क्रिया को बारह बार प्रातः तथा बारह बार सायं कीजिए। अभ्यास के समय ॐ का मानसिक जप कीजिए। यदि आप चाहें, तो सुखपूर्वक प्राणायाम को भी इस आसन में कर सकते हैं। यह आसन, प्राणायाम, ध्यान तथा विश्राम का समन्वय है। यह केवल शरीर को ही नहीं, वरन् मन को भी आराम देता है। यह आराम, शान्ति तथा सुख प्रदान करता है। यह वृद्ध व्यक्तियों के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

२३. तालबद्ध प्राणायाम

पुरुषों तथा स्त्रियों का श्वास बहुत ही अनियमित होता है। प्रश्वास १६ मात्रा तक प्राण बाहर जाता है तथा श्वास लेते समय केवल १२ मात्र ही भीतर आता है। इस प्रकार ४ मात्रा की कमी हो जाती है। परन्तु यदि आप १६ मात्रा श्वास खींचे, तो आप तालबद्ध प्राणायाम करने लगेंगे। तब कुण्डलिनी शक्ति जाग पड़ेगी। तालबद्ध प्राणायाम के अभ्यास से आपको वास्तविक सुविश्राम मिलेगा। आप श्वास-क्रिया के केन्द्र को, जो मस्तिष्क-पुच्छ (मेडुला ओब्लोंगाटा) में स्थित है तथा अन्य स्नायुओं को भी वश में कर लेंगे; क्योंकि श्वास-क्रिया का केन्द्र अन्य स्नायुओं पर एक प्रकार का नियन्त्रणकारी प्रभाव रखता है। जिसकी स्नायुएँ शान्त होती हैं, उसका मन भी शान्त रहता है।

यदि पूरक तथा रेचक की मात्राएँ बराबर रहें, तो आप तालबद्ध श्वास लेंगे। यदि ६ ॐ का जप करते हुए श्वास लें, तो ६ ॐ का जप करते हुए श्वास निकालें। यही श्वास-प्रश्वास की तालगत क्रिया है। इससे सारा शरीर सन्तुलित हो जायेगा। यह शरीर, मन तथा इन्द्रियों को सन्तुलित कर श्रान्त स्नायुओं को प्रशमित करेगा। आप पूर्ण शान्ति तथा आराम पायेंगे। सारे उफनते हुए आवेग दूर हो जायेंगे तथा उमड़ती भावनाएँ शान्त हो जायेंगी।

तालबद्ध प्राणायाम का दूसरा प्रकार भी है। चार बार ॐ का जप करते हुए दोनों नासापुटों से धीरे-धीरे श्वास लीजिए। आठ ॐ का जप करते हुए श्वास को रोकिए (आभ्यन्तर कुम्भक), चार ॐ का जप करते हुए श्वास को छोड़िए तथा आठ ॐ का जप करते हुए श्वास को बाहर की ओर रोके रखिए (बाह्य कुम्भक) ।

अपनी शक्ति एवं क्षमता के अनुसार उपर्युक्त प्राणायाम का कई बार अभ्यास कीजिए। आप कुछ अभ्यास के अनन्तर रेचक तथा पूरक की अवधि को ८ ॐ तक तथा आभ्यन्तर एवं बाह्य कुम्भक को १६ ॐ तक ले जा सकते हैं; परन्तु अपनी शक्ति का निश्चय किये बिना मात्रा में वृद्धि न लाइए। आपको अत्यधिक श्रम का अनुभव नहीं होना चाहिए। ताल बनाये रखने पर ही आपको पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। स्मरण रहे कि श्वास की लम्बाई से अधिक महत्त्वपूर्ण है ताल। अपने सम्पूर्ण शरीर में ताल का अनुभव कीजिए। अभ्यास से ही आप इसमें पूर्णता प्राप्त करेंगे। धैर्य तथा अध्यवसाय की आवश्यकता है।

२४. सूर्यभेद

पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका से वाम नासिका-पुट को बन्द रखिए। बिना किसी प्रकार का शब्द किये हुए आरामपूर्वक दाहिने नासिका पुट से धीरे-धीरे श्वास खींचिए। तब दाहिने हाथ के अँगूठे दाहिने नासिका पुट को बन्द कर जालन्धर-बन्ध लगा कर ठुड्डी को छाती से दबा कर दृढ़तापूर्वक रखते हुए श्वास को रोकिए। श्वास को तब तक रोके रखिए, जब तक कि पसीना नाखून के किनारे तथा बालों से न निकलने लगे। आरम्भ में ही आप इस अवस्था को नहीं पहुँच सकते। आपको कुम्भक का समय शनैः-शनै बढ़ाना होगा। यह सूर्यभेद-कुम्भक के अभ्यास की चरम सीमा है। दाहिने नासिका पुट को अँगूठे से बन्द कर वाम नासिका-पुट से बिना शब्द के धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। पूरक, कुम्भक तथा रेचक के समय ॐ का मानसिक जप कीजिए। रोके हुए श्वास को बलपूर्वक ऊपर की ओर ले जा कर कपाल को शुद्ध करते हुए बाहर निकालिए।

इस प्राणायाम का अभ्यास बारम्बार करना चाहिए। यह मस्तिष्क को शुद्ध करता है, आँत के कीड़ों को मारता है तथा वायु के आधिक्य से उत्पन्न रोगों को दूर करता है। यह वायु से उत्पन्न चार प्रकार के दोषों को दूर करता है तथा वातरोग को ठीक करता है। यह नासाकोप, शिरपीड़ा तथा विविध प्रकार के वातशूलों का निवारण करता है। ललाट-कोटर में पाये जाने वाले कीड़ों को दूर करता है। यह जरा-मृत्यु को नष्ट करता, कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता तथा जठराग्नि प्रदीप्त करता है।

२५. उज्जाई

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। मुँह बन्द कर लीजिए। दोनों नासिकाओं से समरूप में धीरे-धीरे तब तक श्वास लीजिए, जब तक गले से हृदय तक का स्थान वायु से भर न जाये।

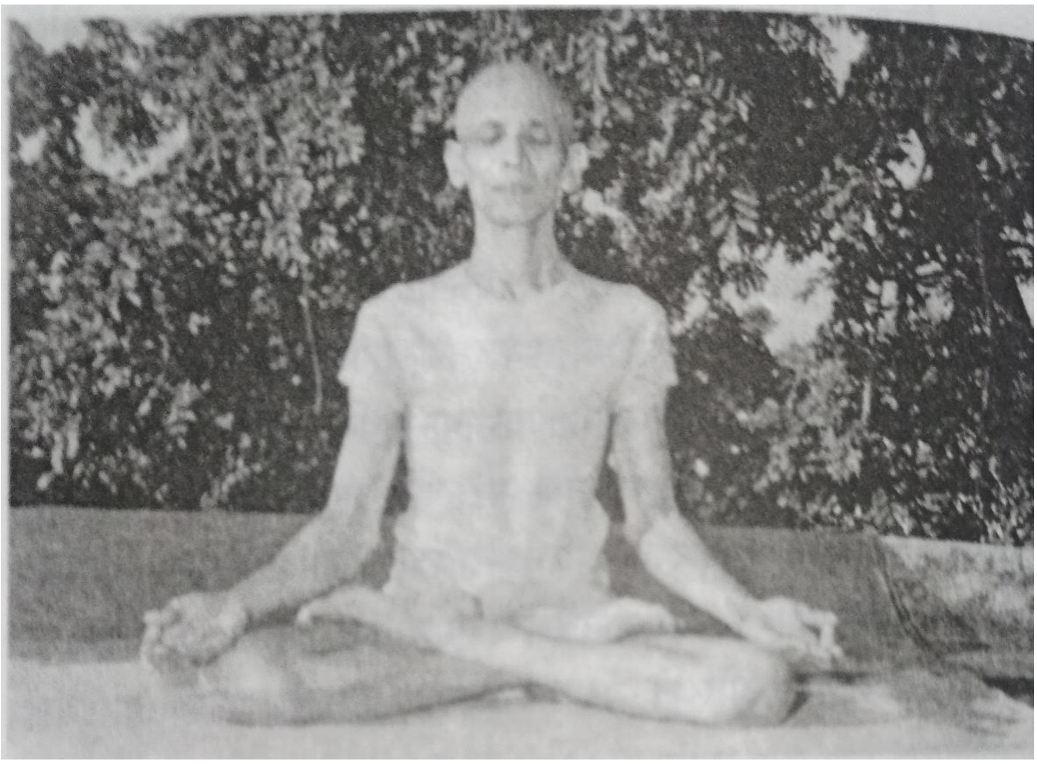

जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोके रख सकें, रोकिए । तब दाहिने नासिका-पुट को दाहिने हाथ के अँगूठे से बन्द कर वाम नासिका -पुट से धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। श्वास खींचते समय छाती को खूब फुलाइए। श्वास लेते समय कण्ठद्वार को आंशिक बन्द करने के कारण एक विचित्र ध्वनि होती है। यह ध्वनि मन्द तथा एक सुर की होनी चाहिए। यह अबाध भी होनी चाहिए। चलते समय या खड़े रहते समय भी कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। बायें नासिका-पट से श्वास निकालने के स्थान में आप दोनों नासिका-पुटों से धीरे-धीरे श्वास निकाल सकते हैं।

यह शिर की गरमी को दूर करता है। साधक बड़ा ही सुन्दर हो जाता है। जठराधि प्रदीप्त होती है। यह शरीर तथा धातुओं में होने वाले दोष दूर करता है तथा जलोदर रोग ठीक करता है। यह गले के कफ को दूर करता हैं। दमा, क्षय तथा सभी प्रकार के फुप्फुसीय रोग दूर होते हैं। सभी प्रकार के हृदय-रोग तथा वे रोग जो श्वास में ओषजन की कमी के कारण होते हैं, दूर हो जाते हैं। उज्जाई - प्राणायाम द्वारा सारे कर्म सिद्ध हो जाते हैं। इसके अभ्यासी को कफ, स्नायु, मन्दाग्नि, आमातिसार, प्लीहा वृद्धि, क्षय, खाँसी या ज्वर के रोग नहीं होते। जरा-मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए उज्जाई कीजिए।

२६. शीतकारी

जिह्वा को इस तरह मोड़ लीजिए कि इसका अग्रभाग ऊपरी तालु को स्पर्श और फिर मुँह से शीत्कारपूर्वक पूरक कीजिए। तदनन्तर यथाशक्ति श्वास रोकिए। घुटन का अनुभव न हो। तब धीरे-धीरे दोनों नासा-छिद्रों से श्वास बाहर निकालिए। आप उपर्युक्त प्राणायाम के समय दाँत की दोनों पंक्तियों को भी सटा कर रख सकते हैं।

यह साधक के सौन्दर्य तथा शारीरिक शक्ति को बढ़ाता है। यह भूख, प्यास, आलस्य तथा निद्रा को दूर करता है। उसका बल इन्द्र के समान हो जायेगा। वह योगियों का राजा हो जायेगा। वह अलौकिक कर्मों को करने

लगेगा। वह स्वतन्त्र सम्राट् बन जाता है। वह अजेय बन जाता है। कोई भी चोट उस पर प्रभाव नहीं डालेगी। प्यास लगने पर इसका अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही प्यास से मुक्त हो जायेंगे।

२७. शीतली

जिह्वा को ओष्ठों से कुछ दूरी पर बाहर निकालिए। जिह्वा को मोड़ कर नली की भाँति बनाइए। शीत्कार की आवाज करते हुए वायु पूरक कीजिए। जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोक सकें, रोके रखिए। तब दोनों नासारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिए। इसका प्रतिदिन प्रात १५ से ३० बार बारम्बार अभ्यास कीजिए। आप इसे पद्मासन, वज्रासन या चलते-फिरते एवं खड़े रह कर भी कर सकते हैं। सिद्धासन,

यह प्राणायाम रुधिर शुद्ध करता है। यह प्यास बुझाता तथा भूख शान्त करता है। यह शरीर में शीतलता लाता है। इसके अभ्यास से गुल्म, प्लीहा, बहुत से जीर्ण रोगों की जलन, ज्वर, तपेदिक, अपच, पित्तदोष, कफ, विष तथा सर्पदेश के कुप्रभाव दूर होते हैं। यदि आप किसी जंगल या ऐसे स्थान में पड़ गये हैं जहाँ प्यास लगने पर पानी न मिले, तो इस प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। आपकी प्यास तुरन्त शान्त हो जायेगी। जो इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करते हैं, वे सर्प तथा बिच्छुओं के दंश से प्रभावित नहीं होते। शीतली कुम्भक सर्प के श्वास लेने का अनुकरण है। इसका अभ्यासी अपने चर्म को छोड़ देने तथा वायु, जल और अन्न के बिना रहने की शक्ति प्राप्त करता है। वह सब प्रकार की जलन तथा ज्वर के लिए अभेद्य बन जाता है।

२८. भस्त्रिका

संस्कृत में भस्त्रिका शब्द का अर्थ भाथी या धौंकनी है। भाथी की तरह लम्बा तथा वेगपूर्वक श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका प्राणायाम का विशेष लक्षण है। जिस तरह लोहार जल्दी-जल्दी भाथी चलाता है, उसी ह आपको जल्दी-जल्दी श्वास लेना तथा निकालना चाहिए।

पद्मासन में बैठ जाइए। शिर, ग्रीवा तथा शरीर को एक सीध में रखिए। मुँह को बन्द कर लीजिए। लोहार की धौंकनी के समान दश बार जल्दी-जल्दी श्वास लीजिए तथा छोड़िए। छाती को बारम्बार फैलाइए तथा सिकोडिए। इस प्राणायाम के समय फुफकारने की-सी ध्वनि होती है। साधक को चाहिए कि वह वेगपूर्वक श्वास छोड़ते हुए पूरक एवं रेचक के दुत क्रम को बनाये रखे। जब रेचक की आवश्यक संख्या, मान लीजिए १०. पूरी हो जाये तो अन्तिम रेचक के बाद यथाशक्ति गम्भीर श्वास लीजिए। जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोक सकें, रोके रखिए। तब गम्भीरतम प्रश्वास धीरे-धीरे छोड़िए। इस प्रश्वास के अनन्तर भस्त्रिका की एक आवृत्ति पूरी हो जाती है। एक आवृत्ति के अनन्तर कुछ सामान्य श्वास लेते हुए विश्राम कर लीजिए। इससे आपको आराम मिलेगा और आप दूसरी आवृत्ति के लिए तैयार हो जायेंगे। नित्य-प्रति प्रातः काल तीन आवृत्ति कीजिए। आप सायंकाल को भी पुनः तीन आवृत्ति कर सकते हैं। व्यस्त लोग, जिन्हें प्राणायाम के लिए समय नहीं मिलता, कम-से-कम एक आवृत्ति अवश्य करें, इससे वे स्वस्थ रहेंगे।

भस्त्रिका शक्तिशाली व्यायाम है। कपालभाति तथा उज्जाई के मेल से भस्त्रिका बनता है। प्रारम्भ में कपालभाति तथा उज्जाई का अभ्यास कीजिए। तब आप भस्त्रिका बहुत ही सुगमता से कर सकेंगे। कुछ लोग थकने तक भन्निका का अभ्यास करते हैं। आप पसीने से तर हो जायेंगे। यदि शिर में चक्कर आने का अनुभव हो, तो तुरन्त अभ्यास बन्द कर सामान्य रूप से श्वास लीजिए। शिर का चक्कर दूर होने पर पुनः अभ्यास कर सकते

हैं। शीतकाल में प्रातः - सायं — दोनों समय भस्त्रिका कर सकते हैं। ग्रीष्मकाल में प्रातःकाल ठण्ढे समय में ही कीजिए।

भस्त्रिका के अभ्यास से गले की सूजन दूर होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, कफ दूर होता है तथा नासिका और छाती की व्याधियाँ दूर होती है। यह दमा, क्षम आदि रोगों का भी निवारक है। इससे अच्छी भूख लगती है। यह तीन ग्रन्थियों अर्थात् ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि का भेदन करता है। भक्षिका कफ को दूर करता है जो ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) के द्वार को बन्द रखता है। कफ, वायु तथा पित्त के विकार से उत्पन्न सारे रोग दूर होते हैं। यह शरीर को उष्ण रखता है। किसी ठण्डे स्थल में, जहाँ शीत से बचने के लिए आपके पास पर्याप्त वस्त्र न हों, इस प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही शरीर में पर्याप्त उष्णता प्राप्त करेंगे। यह नाड़ियों को • रूप से शुद्ध करता है। यह सभी कुम्भकों से अधिक लाभदायक है। भस्त्रिका कुम्भक का विशेष रूप से अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि यह प्राण को सुषुम्ना में दृढ़ता से स्थित तीनों ग्रन्थियों के भेदन में सक्षम बनाता है। कुण्डलिनी को शीघ्र जगाता है। साधक कदापि किसी रोग से आक्रान्त नहीं होगा। वह सदा स्वस्थ बना रहेगा।

साधक की शक्ति तथा क्षमता के अनुसार आवृत्तियों की संख्या निश्चित की जाती है। अति न कीजिए। कुछ साधक छह आवृत्ति करते हैं। कुछ बारह आवृत्ति भी करते हैं।

आप भस्त्रिका का अभ्यास निम्नांकित प्रकार से भी कर सकते हैं। इसके अन्त में थोड़ा-सा परिवर्तन है। बीस बार पूरक, रेचक के अनन्तर दक्षिण नासिका पुट से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करें और तब वाम नासिका पुट से रेचक करें। अब बाम नासिका -पुट से पूरक करके पूर्ववत् कुम्भक करें। तत्पश्चात् दक्षिण नासिकापुर से रेचक कर दें।

अभ्यास-काल में अर्थ तथा भाव के साथ ॐ का जप कीजिए।

भस्त्रिका के कुछ प्रकार हैं जिनमें श्वास-क्रिया के लिए एक ही नासारन्ध्र का उपयोग किया जाता है। दूसरे प्रकार में पूरक तथा रेवक के लिए दोनों नासापुटों का उपयोग बारी-बारी से किया जाता है।

जो दीर्घ काल तक उग्र रूप से भस्त्रिका करना चाहते हैं, उन्हें खिचड़ी पर रहना चाहिए तथा अभ्यास करने से पूर्व प्रातः समय वस्ति-क्रिया करनी चाहिए अथवा एनीमा लेना चाहिए।

२९. भ्रामरी

पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जाइए। दोनों नासिका-पुटों से भृंग के सदृश ध्वनि करते हुए वेगपूर्वक पूरक करें तथा दोनों नासिका-पुटों से भृगी के सदृश्य शब्द करते हुए वेगपूर्वक रेचक करें।

आप तब तक इसका अभ्यास कर सकते हैं, जब तक सारा शरीर पसीने से सराबोर न हो जाये। अन्त में दोनों नासिका-पुटों से पूरक कीजिए, यथाशक्ति कुम्भक कीजिए और तब दोनों नासिका-पुटों से रेचक कीजिए। इस कुम्भक के अभ्यासी को जो सुख मिलता है, वह असीम तथा अवर्णनीय है। प्रारम्भ में रक्त संचार में तीव्रता के कारण शरीर में गरमी बढ़ती है। अन्त में पसीना आने से शारीरिक उष्णता कम हो जाती है। इस भ्रामरी-कुम्भक में सफलता पाने से योगी को समाधि में सफलता मिलती है।

३०. मूर्च्छा

आसन लगा कर पूरक कीजिए। अब कुम्भक कीजिए। ठुड्डी को छाती से गड़ा कर जालन्धर-बन्ध कीजिए। तब तक कुम्भक कीजिए, जब तक मूर्च्छा न मालूम हो। मूर्च्छा-सी आने लगने पर धीरे-धीरे रेचक कीजिए। यह मूर्च्छा-कुम्भक है; क्योंकि यह मन को मूर्च्छित कर आनन्द प्रदान करता है, परन्तु यह कुम्भक सभी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

३१. प्लावनी

इस प्राणायाम के अभ्यास के लिए साधक में कौशल का होना आवश्यक है। जो प्लावनी करता है, वह जल-स्तम्भ कर सकता है तथा यथेष्ट जल पर कितने भी समय तक तैर सकता है। श्री 'स' एक ऐसे योगी हैं जो लगातार बारह घण्टे तक जल पर लेटे रह सकते हैं। जो प्लावनी- कुम्भक का अभ्यास करता है, वह वायु पी कर अन्न के बिना ही कई दिनों तक रह सकता है। साधक वायु को जल की भाँति पी कर उसे पेट में पहुँचाता है। वायु भरने से पेट थोड़ा फूल जाता है। वायु से भरे हुए पेट पर उँगली से थपथपाने पर विशेष ढोल की सी आवाज आती है। क्रमिक अभ्यास की आवश्यकता है। इस प्राणायाम में निष्णात व्यक्ति की सहायता की भी आवश्यकता है। साधक पेट से सब हवा को डकार द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकाल सकता है।

३२. केवल-कुम्भक

कुम्भक दो प्रकार का होता है : सहित तथा केवल । रेचक तथा पूरक से युक्त कुम्भक को सहित कहते हैं। जिसमें रेचक तथा पूरक न हो, वह केवल-कुम्भक है। सहित- कुम्भक में कुशल हो जाने पर आप केवल का अभ्यास कर सकते हैं। अभ्यास के अनन्तर जब कुम्भक बिना पूरक तथा रेचक के ही देश, काल तथा मात्रा से रहित हो कर लगने लगे, तो उसे केवल - कुम्भक या चतुर्थ प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम से योगी अदृश्य हो कर आकाश में भ्रमण करने की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वसिष्ठ-संहिता का कहना है कि 'जब साधक रेचक तथा पूरक का त्याग कर सुखपूर्वक श्वास को रोकने लगता है, तब इसे केवल कुम्भक कहते हैं। इस प्राणायाम ' में बिना पूरक-रेचक किये हुए एकदम श्वास-प्रश्वास की गति को रोक देते हैं। इस कुम्भक के द्वारा साधक स्वेच्छानुसार जितनी देर चाहे श्वास को रोक सकता है। वह राजयोग की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। केवल कुम्भक के द्वारा कुण्डलिनी का ज्ञान होता है। कुण्डलिनी जगती है। तथा सुषुम्ना सभी बाधाओं से मुक्त हो जाती है। वह हठयोग में निपुणता प्राप्त कर लेता है। आप इस कुम्भक का अभ्यास दिन में तीन बार कर सकते हैं। जो केवल-कुम्भक प्राणायाम को जानता है, वह सच्चा योगी है। जिसे • केवल कुम्भक में सफलता मिल गयी है, वह तीनों लोकों में क्या नहीं कर सकता? ऐसे महात्मा धन्य हैं। यह कुम्भक सारे रोगों को दूर कर दीर्घायु प्रदान करता है।

३३. प्राण - चिकित्सा

जो प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, वे अपने प्राण-संचार द्वारा असाध्य बीमारियों को अच्छा कर सकते हैं। वे कुम्भक के अभ्यास द्वारा अपने भीतर भी तुरन्त प्राणों का पुनः संचार कर सकते हैं। ऐसा कदापि न सोचिए कि दूसरों में वितरित करने से आपके प्राण में कमी होगी। जितना अधिक आप प्राण का वितरण करेंगे, उतना ही अधिक हिरण्यगर्भ आपमें प्राण का संचार करेगा। यह प्रकृति का नियम है। कृपण न बनिए। यदि कोई बात-व्याधि का रोगी है, तो उसके पैरों की कोमलतापूर्वक मालिश कीजिए। कुम्भक कीजिए तथा भावना कीजिए कि आपके

हाथों से प्राण प्रवाहित हो कर रोगी के पैर में जा रहा है। स्वयं को हिरण्यगर्भ से संयोजित कर लीजिए तथा भावना कीजिए कि ब्रह्माण्ड-शक्ति आपके हाथों से रोगी के पैर की ओर प्रवाहित हो रही है। रोगी शीघ्र ही गरमी, आराम तथा बल का अनुभव करेगा। आप अपने चुम्बकीय स्पर्श तथा हाथों से सहलाने के द्वारा सिरदर्द, उदर-पीड़ा अथवा अन्य प्रकार के रोगों को शीघ्र ही दूर कर सकते हैं। यकृत, प्लीहा, उदर आदि शरीर के अंगों अथवा भागों को सहलाते समय उन स्थानों के जीव कोशों को आप इस प्रकार आदेश दे सकते हैं: "हे जीव-कोश! अपने कार्यों को अच्छी तरह करो। मैं तुम्हें ऐसा ही आदेश देता हूँ।" वे आपका आदेश मानेंगे। उनमें भी अवचेतन बुद्धि रहती है। दूसरों में प्राण-संचार करते समय ॐ का जप कीजिए। कुछ रोगियों पर इसका प्रयोग कीजिए। आपको क्षमता प्राप्त होगी। आप बिच्छू देश का भी उपचार कर सकते हैं। धीरे-धीरे पैर को सहलाते हुए विष को उतार दीजिए ।

प्राणायाम के नियमित अभ्यास के द्वारा आप असाधारण धारणा-शक्ति, दृढ़ संकल्प शक्ति तथा पूर्ण स्वस्थ एवं सबल शरीर प्राप्त करेंगे। आपको अभिज्ञतापूर्वक प्राण शक्ति को शरीर के अस्वस्थ भागों की ओर ले जाना होगा। यदि आपका यकृत मन्द रूप से काम करता है तो पद्मासन पर बैठ जाइए। अपनी आँखें बन्द कीजिए। ३ बार ॐ का जप करते हुए धीरे-धीरे श्वास लीजिए। ६ बार ॐ का जप करते हुए श्वास को रोके रखिए। प्राण को यकृत के भाग में ले जाइए। अपने मन को वहीं स्थिर कीजिए। वहीं पर ध्यान जमाइए। कल्पना कीजिए कि प्राण-शक्ति यकृत के सभी भागों के कोशाणुओं तथा ऊतकों में व्याप्त हो कर वहाँ अपना आरोग्यकर, सम्पोषक तथा रचनात्मक कार्य कर रही है। रुग्ण भाग में इस प्राण-संचार की क्रिया में श्रद्धा, भावना, ध्यान तथा रुचि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। तब धीरे-धीरे श्वास निकालिए । रेचक करते समय भावना कीजिए कि यकृत का दूषित मल बाहर फेंका जा रहा है। इस क्रिया को १२ बार प्रातःकाल तथा १२ बार सायंकाल को कीजिए । कुछ ही दिनों में यकृत मान्द्य जाता रहेगा। यह बिना औषधि का ही उपचार है। यह प्राकृतिक चिकित्सा है। आप प्राणायाम के समय प्राण को शरीर के किसी दूर कर भी भाग में ले जा कर साध्य तथा असाध्य-सभी बीमारियों को सकते हैं। स्वयं की चिकित्सा के लिए एक या दो बार इसका प्रयोग कीजिए। आपका विश्वास दृढ़ हो जायेगा। हाथ में मक्खन रहते हुए भी घी के लिए रोने वाली स्त्री की तरह आप क्यों बन रहे हैं? आपके पास सर्वदा सस्ता, प्रभावकारी औषध प्राण सुलभ है। वह सदा आपकी आज्ञा के पालन के लिए तैयार है। बुद्धिमत्तापूर्वक इसका उपयोग कीजिए। धारणा तथा अभ्यास में प्रगति करने पर आप स्पर्शमात्र से ही बहुत-से रोगों को दूर कर सकते हैं। उन्नतावस्था में बहुत-सी व्याधियाँ केवल इच्छा-शक्ति द्वारा दूर हो जाती हैं।

३४. दूरस्थ उपचार

इसे अन्यत्रवासी चिकित्सा भी कहते हैं। आप आकाश द्वारा दूर निवास कर रहे अपने मित्रों के पास प्राण को भेज सकते हैं। उसकी मानसिक अभिवृत्ति ग्रहणशील होनी चाहिए। आप जिस व्यक्ति की इस दूरस्थ उपचार की विधि से चिकित्सा करना चाहते हैं, उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध का अनुभव करें।

आप पत्र द्वारा उसके साथ अपना समय निर्धारित कर सकते हैं। आप लिख सकते हैं: "चार बजे प्रातः तैयार हो जाइए। मन को ग्रहणशील बनाइए। किसी आरामकुरसी पर लेट जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। मैं प्राण का संचार करूँगा।" रोगी से मन में कहिए: "मैं प्राण सामग्री का संचार कर रहा हूँ।" प्राण भेजते समय कुम्भक कीजिए । तालयुक्त श्वास-प्रश्वास का अभ्यास कीजिए। यह भावना कीजिए कि श्वास छोड़ते समय आपके मन से प्राण बाहर निकल रहा है तथा वह आकाश से हो कर रोगी के शरीर में प्रवेश कर रहा है। रेडियो तरंगों की तरह प्राण अदृश्य रूप से गमन करता तथा विद्युत् की तरह आकाश में दमकता है। चिकित्सक के विचार से अनुरंजित हो प्राण का बहिर्प्रक्षेपण होता है। आप कुम्भक के द्वारा स्वयं में पुनः प्राण का संचार कर सकते हैं। इसके लिए दीर्घ, स्थिर तथा नियमित अभ्यास की आवश्यकता है।

३५. शिथिलीकरण

शरीर की मांसपेशियों को शिथिल करने के अभ्यास से शरीर तथा मन को आराम मिलता है। मांसपेशियों का तनाव दूर हो जाता है। जो लोग शिथिलन - कौशल को जानते हैं, उनकी शक्ति जरा भी नष्ट नहीं होती। वे ध्यान अच्छी तरह कर सकते हैं। कुछ गम्भीर श्वास ले कर पीठ के बल शवासन की भाँति लेट जाइए। शिर से पैर तक की सभी मांसपेशियों को ढीला छोड़ दीजिए। एक तरफ करवट लीजिए तथा जितना हो सके, शिथिल हो जाइए। सोते समय सभी स्वाभाविक रूप से ऐसा करते हैं। शिथिलीकरण के विविध अभ्यास हैं, जिनसे शरीर के अंग-विशेष में मांसपेशी-विशेष को शिथिल किया जा सकता है। आप शिर, कन्धों, भुजाओं, हाथों, कलाइयों, उँगलियों, जाँघों, घुटनों, पैर की उँगलियों, कुहनियों आदि को शिथिल कर सकते हैं। योगी शिथिलीकरण-कौशल को अच्छी तरह जानते हैं। इन अभ्यासों को करते समय मन में शान्ति तथा स्फूर्ति का चित्र बनाये रखिए।

३६. मन का शिथिलन

चिन्ता तथा क्रोध का निवारण कर मानसिक सन्तुलन तथा शान्ति प्राप्त की जा सकती है। वास्तव में चिन्ता तथा क्रोध—दोनों के मूल में भय है। चिन्ता तथा क्रोध से कुछ भी लाभ नहीं होता, प्रत्युत् इन दोनों मनोविकारों के कारण शक्ति का अत्यधिक अपव्यय हो जाता है। यदि मनुष्य बहुत चिन्ता किया करता है तथा बहुत ही चिड़चिड़ा है तो वह निश्चय ही बहुत ही दुर्बल है। सावधान तथा विचारशील बनिए। सारी अनावश्यक चिन्ताओं का परिहार किया जा सकता है। मासपेशियों का शिथिलन मन पर प्रतिक्रिया करता है तथा मन में शान्ति लाता है। शरीर तथा मन का गहरा सम्बन्ध है। शरीर मन की ही रचना है। वह मन के भोग के लिए ही उत्पन्न है।

शरीर को ढीला करके आराम के साथ एक आसन पर १५ मिनट बैठिए। अपनी आँखें बन्द कर लीजिए। मन को बाह्य विषयों में समेट लीजिए। मन को शान्त कर लीजिए। उफनते विचारों को शान्त कीजिए। ऐसा सोचिए कि यह शरीर नारियल के छिलके के समान है तथा आप इससे सर्वथा भिन्न है। सोचिए कि शरीर आपके हाथों का उपकरण है। सर्वव्यापक आत्मा से तादात्म्य कीजिए। भावना कीजिए कि सारा जगत् तथा आपका शरीर इस विशाल आत्म-सागर में एक तृण के समान तैर रहा है। भावना कीजिए कि आप परमात्मा के सम्पर्क में हैं। भावना कीजिए कि समस्त जगत् का जीवन आपसे हो कर स्पन्दमान, दोलायमान तथा वेपमान हैं। भावना कीजिए कि जीवन-महासागर अपने विशाल वक्ष स्थल पर आपको धीरे-धीरे झूला झुला रहा है। तब अपनी आँखें खोलिए। आप अतीव मानसिक शान्ति, मनोबल तथा मानसिक स्फूर्ति का अनुभव करेंगे। अभ्यास कीजिए तथा इसका अनुभव कीजिए।

३७. प्राणायाम का महत्त्व तथा लाभ

"अनेक जन्मों के अभ्यास से जो मिथ्या सांसारिक वासना उत्पन्न हुई। है, वह दीर्घ काल तक योगाभ्यास के बिना कदापि नष्ट नहीं होती। विधिसम्मत साधन को अपनाये बिना बार-बार के बैठने से मन को वश में लाना असम्भव है" (मुक्तिकोपनिषद्) ।

"योग के बिना मोक्षप्रदायक ज्ञान कैसे हो सकता है? ज्ञान से रहित योगाभ्यास भी मोक्ष प्राप्त कराने में असमर्थ है, अतः मुक्ति के साधक को योग तथा ज्ञान—दोनों का अभ्यास करना चाहिए" (योगतत्त्वोपनिषद्) ।

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् -उससे प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है" (योगसूत्र २-५२) ।

रजोगुण और तमोगुण ही आवरण कहे गये हैं। यह आवरण प्राणायाम के अभ्यास से दूर हो जाता है। आवरण के दूर हो जाने पर आत्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता है। चित्त सात्त्विक अंशों से बना है; परन्तु यह रजस् तथा तमस् से उसी तरह आच्छन्न है जिस तरह अग्नि धूम से। प्राणायाम से बढ़ कर कोई भी शोधक क्रिया नहीं है। प्राणायाम से शुद्धता प्राप्त होती है तथा ज्ञान ज्योति विभासित हो जाती है। प्राणायाम के अभ्यास से योगी के विवेक को आच्छादित करने वाला कर्म नष्ट हो जाता है। कामनाओं के चमत्कारिक झमेले से शुद्ध ज्योतिर्मय तत्त्व आच्छादित रहता है तथा जीव पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है। प्रतिक्षण प्राणायाम से योग का वह कर्म जो प्रकाश को आच्छादित करता है तथा जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँधता है, क्षीण हो जाता है। वाचस्पति के अनुसार क्लेश तथा पाप ही आच्छादन करते हैं।

मनु कहते हैं- "प्राणायाम के द्वारा मलों को जला देना चाहिए।" विष्णुपुराण प्राणायाम को योग का सहायक बतलाता है: "जो अभ्यास द्वारा प्राण नामक वायु को ज्ञात करना चाहता है, उसे प्राणायाम का आश्रय लेना चाहिए। "

"धारणासु च योग्यता मनसः और धारणाओं में मन की योग्यता होती है" योगसूत्र २-५३)।

प्रकाशावरण के दूर होने पर मन स्वतः एकाग्र होने लगता है। विक्षेप के दूर होने पर मन निर्वातस्थ प्रदीप की भाँति स्थिर हो जाता है। प्राणायाम शब्द का व्यवहार कभी-कभी रेचक, पूरक तथा कुम्भक—इन तीनों के लिए तथा कभी-कभी इनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग किया जाता है। जब प्राण वायु आकाश-तत्त्व में संचरित होता है, तो श्वास-क्रिया धीमी पड़ जाती है। इस समय श्वास को रोक देना आसान होता है। प्राणायाम के द्वारा मन का वेग धीरे-धीरे कम हो जाता है। यह वैराग्य भी उत्पन्न करता है।

यदि आप श्वास को एक इंच अन्दर रोके रख सकें, तो आपमें भविष्यवाणी- सिद्धि आ जायेगी; यदि दो इंच अन्दर रोके रख सकें, तो पर- विचार - ज्ञान की सिद्धि प्राप्त करेंगे; तीन इंच तक रोके रखने से शरीर ऊपर उठेगा; चार इंच तक रोकने से मनोमिति, अतीन्द्रिय-श्रवण आदि; पाँच इंच रोकने से इस जगत् में अदृश्य बन कर भ्रमण करने की शक्ति; छह इंच से काया-सिद्धि की प्राप्ति; सात इंच रोकने से परकाय-प्रवेश; आठ इंच रोकने से सदा चिरयौवनत्व की सिद्धि; नौ इंच से देवों से काम कराने की शक्ति; दश इंच से अणिमा, महिमा तथा अन्य सिद्धियाँ तथा ग्यारह इंच से आप परमात्मा से एकता प्राप्त कर लेंगे। प्रबल अभ्यास के द्वारा जब योगी तीन घण्टे तक कुम्भक करने लगे, तो वह अपने अँगूठे पर ही शरीर को सन्तुलित कर सकता है। वह निस्सन्देह सारी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। जिस तरह अग्नि ईंधन को भस्म कर डालती है, उसी तरह प्राणायाम पापों की राशि को जला डालता है। प्रत्याहार से मन शान्त हो जाता है। धारणा मन को स्थिर बनाती है। ध्यान से मनुष्य शरीर तथा जगत् को भूल जाता है। समाधि से असीम आनन्द, ज्ञान, शान्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

योग-समाधि में योगाग्नि नाभि से शिर तक फैल कर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अमृत को गला देती है। योगी इस अमृत को बहुत ही आनन्द एवं उल्लास से पान करता है। इस योगामृत का पान कर वह महीनों बिना खाये-पीये: सकता है।

शरीर कृश, सबल तथा स्वस्थ बन जाता है। अनावश्यक चरबी कम हो जाती हैं। मुख पर आभा होती है। नेत्र हीरे के समान दमकते हैं। साधक बहुत ही सुन्दर हो जाता है। वाणी मधुर तथा सुरीली हो जाती है। आन्तरिक अनाहत-ध्वनि स्पष्टतः सुनायी पड़ने लगती है। साधक सभी प्रकार के रोगों से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्मचर्य में स्थित हो जाता है। वीर्य दृढ़ एवं स्थिर हो जाता है। जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। साधक ब्रह्मचर्य में इतना दृढ़ हो जाता है कि किसी अप्सरा के आलिंगन करने पर भी उसका मन चलायमान नहीं होता। भूख तेज हो जाती है।

नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, विक्षेप दूर होता है तथा मन एकाग्र हो जाता है। रजस् तथा तमस् नष्ट हो जाते हैं। मन धारणा तथा ध्यान करने के योग्य हो जाता है। मलोत्सर्जन कम पड़ जाता है। नियमित अभ्यास द्वारा आन्तरिक आध्यात्मिक ज्योति, सुख तथा मानसिक शान्ति उदित होती है। इससे साधक ऊर्ध्वरता योगी हो जाता है। उन्नत साधक ही उपर्युक्त सब सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

मनुष्य के मन को साधारण अनुभव से अति-चैतन्यावस्था के नाम से ज्ञात मनसातीत स्तर पर ऊपर उठाया जा सकता है। वह उन सत्यों का साक्षात्कार कर लेता है जिन्हें साधारण चेतना द्वारा जानना असम्भव है। शरीर की सूक्ष्म शक्तियों के सम्यक् प्रशिक्षण तथा कुशल प्रयोग के द्वारा ही मन को उन्नत स्तरों की ओर ले जाया जा सकता है। अति-चैतन्यावस्था को प्राप्त कर मन वहाँ कार्य करने लगता है तथा उन्नत सत्यों और ज्ञान का अनुभव करता है। यही योग का चरम लक्ष्य है जिसे प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त कर सकते हैं। योगी के लिए कम्पनशील प्राण के नियन्त्रण का अर्थ है परम ज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार की अग्नि प्रदीप्त करना।

३८. विशेष उपदेश

१. प्रातः सबेरे उठ कर शौचादि से निवृत्त हो कर अभ्यास के लिए बैठ जाइए। सूखे तथा हवादार कमरे में प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। प्राणायाम के लिए गम्भीर धारणा तथा अवधान की आवश्यकता है। किसी स्थिर आसन-विशेष में बैठ कर प्राणायाम का अभ्यास करना अच्छा है। विक्षेप से बचने के लिए अपने पास किसी व्यक्ति को न रखिए।

२. प्राणायाम के अभ्यास के लिए बैठने से पूर्व अपने नासारन्ध्रों को अच्छी तरह साफ कर लीजिए। अभ्यास करने से पहले आप थोड़ी मात्रा में फल का रस, एक छोटा प्याला दूध अथवा काफी ले सकते हैं। अभ्यास समाप्त करने के दश मिनट बाद एक प्याला दूध या हलका भोजन लें।

३. ग्रीष्म काल में केवल एक बार सबेरे ही अभ्यास कीजिए। यदि शिर में गरमी मालूम हो, तो स्नान करने से पहले शिर में आँवले का तेल या मक्खन लगा लीजिए। पानी में मिश्री घोल कर मिश्री शरबत पीजिए, इससे आपका शरीर शीतल हो जायेगा। शीतली प्राणायाम भी कीजिए। आप गरमी से पीड़ित न होंगे।

४. अत्यधिक बोलने, खाने, सोने, मित्रों से मिलने तथा श्रम करने से बचिए। "योग उसके लिए नहीं है जो अति-आहार करता है; न तो उसके लिए है जो नितान्त अनाहारी है या जो अत्यधिक निद्रा अथवा अत्यधिक जागरण करता है" (गीता : ६-१६) । भोजन करते समय चावल के साथ थोड़ा घी लीजिए, इससे आंतों में चिकनाहट पहुँचती है और अपान वायु निर्विघ्न निकल जाती है।

५. मिताहार बिना यस्तु योगारम्भ तु कारयेत्।
नानारोगो भवेत्तस्य किंचित् योगो न सिध्यति।।

"मिताहार का नियम पालन किये बिना जो योगाभ्यास करता है, उसे कोई सिद्धि तो प्राप्त नहीं होती, वरन् वह नाना रोगों का शिकार बन जाता हैं" (घेरण्ड सं. ५-१६) ।

६. छह महीने या पूरे वर्ष भर तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से योगाभ्यास तथा आध्यात्मिक मार्ग में

शीघ्र उन्नति होती है। यदि आप ब्रह्मचर्य तथा आहार-संयम के बिना योगाभ्यास करेंगे, तो आपको आध्यात्मिक साधना में पूर्णतम लाभ न होगा; परन्तु साधारण स्वास्थ्य के लिए आप योग के सरल अभ्यासों को कर सकते हैं।

७. अपनी साधना में नियमित रहिए। एक दिन भी नागा न कीजिए। बीमार होने पर आप साधना बन्द कर सकते हैं। कुछ लोग कुम्भक बहुत करते समय चेहरे की मासपेशियों को सिकोड़ लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। यह लक्षण इस बात का द्योतक है कि साधक अपनी शक्ति से बाहर जा रहा है। इसका कठोरता से परिहार करना चाहिए। ये लोग नियमित रेचक तथा कुम्भक नहीं कर सकते।

८. **योग में बाधाएँ** — दिन में सोना, रात्रि में देर तक जागना, मल-मूत्र अधिक परिमाण में होना, अपौष्टिक भोजन से उत्पन्न दोष, प्राण के साथ अधिक मानसिक श्रम। जब किसी को कोई रोग होता है, तो वह योगाभ्यास को ही रोग का कारण बतलाता है। यह भारी भूल है।

९. प्रातः चार बजे उठिए। आधा घण्टे तक ध्यान अथवा जप कीजिए। तब आसन तथा मुद्रा कीजिए। १५ मिनट तक आराम कीजिए। तब प्राणायाम कीजिए। आसनों के साथ शारीरिक व्यायाम का समन्वय सरलता से किया जा सकता है। यदि आपके पास पर्याप्त समय हो, तो अन्य व्यायामों को योगाभ्यास तथा ध्यान के अनन्तर कर सकते हैं। शय्या से उठते ही जप तथा ध्यान से पहले प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। इससे आपका शरीर हलका हो जायेगा तथा आप ध्यान में रस लेंगे। सुविधा तथा समय के अनुसार अपने लिए नित्यक्रम बना लीजिए।

१०. आसन तथा प्राणायाम करते समय जप को भी साथ-साथ करने से अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है।

११. चार बजे सबेरे शय्या से उठते ही ध्यान और जप करना बहुत अच्छा होता है। इस समय मन बहुत ही शान्त तथा ताजा रहता है। आपकी धारणा गम्भीर रहेगी।

१२. अधिकांश लोग इस प्रातः काल के अपने बहुमूल्य समय को आधा घण्टा शौच जाने में तथा आधा घण्टा दाँत साफ करने में खो देते हैं। यह बहुत बुरा है। साधक को पाँच मिनट में शौच तथा पाँच मिनट में ही दाँतों को साफ कर लेना चाहिए। यदि कोष्ठबद्धता हो, तो शय्या से उठते ही शलभ, भुजंग तथा धनुरासन का पाँच मिनट तक अभ्यास कीजिए। यदि देर से शौच जाने की आदत है, तो यौगिक अभ्यासों के अनन्तर शौच जाइए।

१३. पहले जप तथा ध्यान कर लीजिए। तब आप आसन तथा प्राणायाम कर सकते हैं। तब ध्यान के लिए थोड़ी देर पुनः बैठ कर आप योगाभ्यास से उठ सकते हैं।

१४. शय्या से उठने पर सदा ही थोड़ी-बहुत निद्रालुता रहती है; अतः इस निद्रालुता को भगाने तथा ध्यान करने योग्य बनने के लिए पाँच मिनट तक कुछ आसनों तथा प्राणायाम का थोड़ा अभ्यास कीजिए। प्राणायाम के अभ्यास के अनन्तर मन एकाग्र हो जाता है। यद्यपि प्राणायाम का सम्बन्ध श्वास से है; परन्तु यह आन्तरिक अंगों तथा समस्त शरीर को ही अच्छा व्यायाम देता है।

१५. योग की क्रियाओं को करने का सामान्य क्रम इस प्रकार है— पहले सारे आसन कीजिए, तब मुद्रा, तब

प्राणायाम तथा तब घ्यान। चूँकि प्रात काल ध्यान के लिए उपयुक्त है, अतः आप इस क्रम का अभ्यास कर सकते हैं जप, ध्यान, आसन, मुद्रा तथा प्राणायाम। यह अधिक उपयुक्त है। जो भी क्रम आपको अनुकूल हो, उसका अनुसरण कीजिए। आसनों को करने के पश्चात् पाँच मिनट तक विश्राम कीजिए और तब प्राणायाम को आरम्भ कीजिए।

१६. कुछ हठयोग की पुस्तकें प्रातः ठण्ढे जल से स्नान करने की अनुमति नहीं देतीं। सम्भवतः इसका कारण यह है कि ठण्ढे स्थलों-जैसे कश्मीर, मसूरी, दार्जिलिंग आदि में व्यक्ति सर्दी अथवा फेफड़े की बीमारी का शिकार बन सकता है। गरम स्थानों में इस तरह का नियम लागू नहीं है। मैं योगाभ्यास करने से पूर्व प्रातः ठण्ढे स्नान का हिमायती हूँ; क्योंकि इससे शरीर में ताजगी तथा स्फूर्ति आ जाती है। यह निद्रा को दूर भगाता है। यह रुधिर-संचार में सन्तुलन लाता है। रुधिर मस्तिष्क की ओर संचरित होता है।

१७. आसन तथा प्राणायाम से सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं, स्वास्थ्य सुधरता है, पाचन शक्ति बढ़ती है, स्नायु शक्तिमान बनते हैं, सुषुम्ना नाड़ी सीधी बनती है, रजस् दूर होता है तथा कुण्डलिनी जगती है। आसन तथा प्राणायाम के अभ्यास से सुन्दर स्वास्थ्य तथा स्थिर मन की प्राप्ति होती है। सुन्दर स्वास्थ्य के बिना कोई साधना सम्भव नहीं है। स्थिर मन के बिना ध्यान सम्भव नहीं है। अतः हठयोग ध्यानयोगी, कर्मयोगी, भक्त तथा वेदान्तियों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

१८. आसन अथवा किसी भी प्रकार के शारीरिक व्यायाम या प्रवृत्ति बिना शरीर का अनुरक्षण असम्भव है। कट्टर वेदान्ती भी अनजाने हठयोगी है। वह नित्य-प्रति किसी-न-किसी प्रकार के आसन का अभ्यास अवश्य करता है। वह ध्यान के समय अनजानते ही प्राणायाम भी करता है; क्योंकि ध्यान के समय प्राणायाम स्वतः होने लगता है।

१९. जब कभी आप किसी तरह की अशान्ति, उदासी या निराशा का अनुभव करें. प्राणायाम का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही नव-शक्ति, स्फूर्ति तथा बल से पूर्ण हो जायेंगे। आप नवीनता, उत्कर्ष तथा आनन्द प्राप्त करेंगे। ऐसा कीजिए तथा देखिए। किसी निबन्ध, लेख या शोध-प्रबन्ध लिखने से पूर्व प्राणायाम कीजिए। आप सुन्दर विचार प्रस्तुत करेंगे तथा यह प्रेरणादायी, ओजपूर्ण मौलिक रचना होगी।

२०. अभ्यास में नियमित बनिए। आसन तथा प्राणायाम से अधिकतम लाभ उठाना चाहते हैं, तो अभ्यास में नियमित होना बहुत ही आवश्यक है। जो यदा-कदा अभ्यास करते हैं, वे अधिक लाभ नहीं उठा सकते। साधारणतः लोग प्रारम्भ में दो महीने तक बड़े उत्साह से करते हैं और तब अभ्यास छोड़ देते हैं। यह भारी भूल है। वे अपने निकट सदा योगी गुरु को चाहते हैं। उनकी मानसिक प्रवृत्ति स्त्री के समान आलम्बन चाहने वाली हो जाती है। वे आलसी, अकर्मण्य तथा प्रमादी होते हैं।

२१. लोग निष्काम सेवा द्वारा मल को तथा योगाभ्यास द्वारा विक्षेप को दूर करना नहीं चाहते हैं। वे एकाएक कुण्डलिनी को जगाना तथा ब्रह्माकार-वृत्ति उठाना चाहते हैं, वे अपने पाँवों को कुठाराघात पहुँचायेंगे। जो आसन तथा प्राणायाम से कुण्डलिनी जगाने का प्रयत्न करते हैं, उनमें मन, वाणी तथा कर्म की शुद्धता होनी चाहिए। उनमें मासनिक तथा शारीरिक ब्रह्मचर्य होना चाहिए, तभी वे कुण्डलिनी- - जागरण का लाभ उठा सकते हैं।

२२. युवावस्था में ही आध्यात्मिकता का बीज बोइए। वीर्य का क्षय न कीजिए। इन्द्रियों तथा मन को

अनुशासित कीजिए। साधना कीजिए। वृद्ध होने पर कोई भी कठिन साधना करना आपके लिए असम्भव हो जायेगा; अतः किशोरावस्था में ही सावधान रहिए। आप स्वतः ही थोड़े समय में विशेष प्रकार के साधनों के विशेष लाभों से परिचित हो जायेंगे।

२३. आध्यात्मिक साधना में आगे बढ़ने पर आपको २४ घण्टे लगातार कठिन मौन का पालन करना चाहिए। इसे कुछ महीनों तक लगातार करना चाहिए। व्यक्ति को आसन, प्राणायाम तथा ध्यान के लिए अपनी रुचि, योग्यता, सुविधा तथा आवश्यकता के अनुसार कुछ अभ्यासों को चुन लेना चाहिए।

२४. इस जगत् में बहुत से आकर्षणों तथा प्रलोभनों के होते हुए भी ब्रह्मचर्य का अभ्यास करना व्यक्ति के लिए सम्भव है। अनुशासित जीवन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, जप, ध्यान, प्राणायाम, सात्त्विक तथा मित आहार, दैनिक आत्म-निरीक्षण तथा विचार, आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-सुधार, सदाचार, यम, नियम, शारीरिक तथा वाचिक तप-इन सबका अभ्यास इस लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। लोग अनियमित, अनैतिक, अमर्यादित, अधार्मिक तथा अनुशासनहीन जीवन यापन करते हैं। यही कारण है कि जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में वे कष्ट सहते तथा विफल होते हैं। जिस तरह हाथी अपने ही शिर पर धूल फेंकता है, उसी तरह वे स्वयं ही मूर्खतावश अपने ही शिर पर कठिनाइयाँ तथा बाधाएँ लाते हैं।

२५. शरीर को अनावश्यक न हिलाया कीजिए। शरीर को हिलाने से बहुधा मन चलायमान हो जाता है। शरीर बारम्बार न खुजलाइए। प्राणायाम, जप तथा ध्यान करते समय आसन चट्टानवत् स्थिर होना चाहिए।

२६. अपने स्वास्थ्य तथा शारीरिक गठन के अनुसार स्वयं ही यह निश्चय कीजिए कि किस प्रकार का आहार आपके लिए अनुकूल है तथा किस प्राणायाम - विशेष से आपको लाभ होगा। तभी आप सुरक्षित रूप से साधना में प्रगति कर सकेंगे। सर्वप्रथम इस पुस्तक में वर्णित विविध अभ्यास-सम्बन्धी निर्देशों को आद्योपान्त पढ़ लीजिए। प्राणायाम की विधि को अच्छी तरह समझ लीजिए। यदि आपको किसी अभ्यास-विशेष में सन्देह हो, तो किसी यौगिक साधक से उसके प्रयोग को देख लीजिए और तब उसका अभ्यास कीजिए । यही सर्वाधिक सुरक्षित मार्ग है। आपको किसी भी अभ्यास को यदृच्छया चुन कर गलत तरीके से अभ्यास करना आरम्भ नहीं कर देना चाहिए।

२७. सारे अभ्यासों के लिए ॐ मन्त्र की मात्रा मैंने बतलायी है। अपनी अभिरुचि के अनुसार आप गुरु-मन्त्र, राम, शिव, गायत्री या केवल संख्या को अपने लिए मात्रा अपना सकते हैं। प्राणायाम के लिए गायत्री अथवा ॐ सर्वोत्तम है। प्रारम्भ में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के लिए मात्रा के नियम का अवश्य पालन करें। सुखपूर्वक कुम्भक, पूरक तथा रेचक करने से स्वतः ही मात्रा तथा अनुपात का हिसाब आ जाता है। साधना में आगे बढ़ जाने पर आपको गणना करने अथवा मात्रा रखने की आवश्यकता नहीं रहेंगी। आदत के बल से आप स्वभावतः ही अनुपात का पालन करने लगेंगे।

२८. प्रारम्भ में कुछ दिनों तक आपको संख्या पर ध्यान देना चाहिए तथा अपनी उन्नति का माप रखना चाहिए। उन्नतावस्था में आपको गणना द्वारा मन को विक्षिप्त करने की आवश्यकता नहीं है। संख्या पूरी होने पर फेफड़े स्वतः ही बतला देंगे।

२९. जब आप थक जायें, तो प्राणायाम को स्थगित कर दें। अभ्यास के साथ तथा बाद में भी सुख तथा आह्लाद का अनुभव होना चाहिए। प्राणायाम के अन्त में शरीर में उत्साह तथा स्फूर्ति होनी चाहिए। बहुत से नियमों में न बँध जाइए।

३०. प्राणायाम करने के अनन्तर तुरन्त स्नान न कीजिए। आधे घण्टे तक विश्राम कीजिए। अभ्यास करते समय स्वेद को अपने तौलिए से न पोंछिए; अपने हाथों से मालिश कीजिए। पसीना आने पर अपने शरीर को ठण्डी वायु में खुला न रखिए।

३१. सदा धीरे-धीरे श्वास लीजिए तथा छोड़िए। किसी प्रकार का शब्द न कीजिए। भस्त्रिका, कपालभाति, शीतली तथा शीतकारी-प्राणायामों में बहुत धीमा शब्द कर सकते हैं।

३२. एक या दो दिन दो या तीन मिनट तक अभ्यास के अनन्तर ही लाभ की अपेक्षा न कीजिए। प्रारम्भ में कई दिनों तक नित्य १५ मिनट तक नियमित रूप से अभ्यास अवश्य कीजिए। यदि आप नित्य-प्रति अभ्यास को बदलते जायेंगे, तो इससे विशेष लाभ प्राप्त न होगा। आपको नित्य अभ्यास के लिए विशेष प्राणायाम को चुन लेना चाहिए। उसी में अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। नित्य अभ्यासों के साथ-साथ दूसरे अभ्यास भी आप समय-समय पर कर सकते हैं। मखिका, कपालभाति तथा सुखपूर्वक प्राणायाम को नियमित दैनिक अभ्यास के लिए रखिए तथा शीतली, शीतकारी आदि को समय-समय पर कीजिए।

३३. पूरक को 'निश्वास' तथा रेचक को 'उच्छ्वास' भी कहते हैं। केवल कुम्भक में मानसिक क्रिया को प्राणायाम का 'शून्यक प्रकार' कहते हैं। स्थिर, नियमित अभ्यास तथा शनैः-शनै कुम्भक के समय को बढ़ाना 'अभ्यास योग' कहलाता है। वायु पी कर उसी पर रहने का नाम 'वायु-भक्षण' है।

३४. शिवयोग-दीपिका के लेखक तीन प्रकार के प्राणायाम बतलाते हैं: प्राकृत, वैकृत तथा केवल कुम्भक स्वाभाविक रूप से श्वास-प्रश्वास द्वारा प्राण ग्रहण करने को प्राकृत-प्राणायाम कहते हैं। यदि पूरक, रेचक तथा कुम्भक में शास्त्र-नियमानुसार अनुपात या प्रतिबन्ध लाया जायें, तो इसे वैकृत कहते हैं। उन्नत अभ्यासी इन दोनों प्रकार के प्राणायामों का परित्याग कर एकदम ही अपने प्राणों को निरुद्ध कर लेते हैं। इसे केवल-कुम्भक कहते हैं। प्राकृत-प्राणायाम मन्त्रयोग के लिए तथा वैकृत लययोग के लिए है।

३५. "कुम्भक वह अवस्था है जिसमें श्वास तथा प्रश्वास — दोनों क्रियाएँ बन्द रहती हैं तथा शरीर निश्चल एक स्थिति में रहता है। तब वह अन्धे की तरह रूप देखता है, बहरे की तरह शब्द सुनता है तथा शरीर को काष्ठवत् पाता है। यही शान्तावस्था का लक्षण है।"

३६. महर्षि पतंजलि ने विभिन्न प्राणायामों के करने पर अधिक बल नहीं दिया है। उनका कहना है—"धीरे-धीरे श्वास छोड़िए, तब श्वास खींचिए तथा कुम्भक कीजिए। आपका मन स्थिर तथा शान्त हो जायेगा।" हठयोगियों ने ही प्राणायाम-विज्ञान का विकास किया है तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के लिए विभिन्न प्राणायामों का उल्लेख किया है।

३७. व्याघ्र चर्म या मृग-चर्म या चौपत किया हुआ कम्बल बिछा लीजिए। उसके ऊपर श्वेत वस्त्र बिछा लीजिए। तब उत्तर की ओर मुख कर ध्यान के लिए बैठिए।

३८. कुछ इस क्रम से करते हैं—रेचक, पूरक तथा कुम्भक; दूसरे पूरक, कुम्भक तथा रेचक के क्रम से करते हैं। उत्तरोक्त प्रणाली ही सुप्रचलित है। याज्ञवल्क्य में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के क्रम से अनेक प्रकार के प्राणायामों का उल्लेख है; परन्तु नारदीय ग्रन्थ में रेचक, पूरक तथा कुम्भक का क्रम है। इनका चुनाव आपकी इच्छा पर निर्भर है।

३९. योगी को सदा भय, क्रोध, आलस्य, निद्रा, जागरण, भोजन और उपवास में अति से बचना चाहिए। यदि उपर्युक्त नियम का अशिथिल रूप से अभ्यास किया गया, तो तीन महीने में आध्यात्मिक ज्ञान स्वत: उत्पन्न होता है, चार महीने में वह देवों के दर्शन करने लगता है, पाँच महीने में वह ब्रह्मविद् और ब्रह्मनिष्ठ बन जाता है तथा छह महीने में वह अपने इच्छानुसार कैवल्य प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

४०. नये साधक को कुछ दिनों तक कुम्भक के बिना केवल पूरक तथा रेचक ही करना चाहिए। रेचक करने के लिए अधिक समय दीजिए। पूरक तथा रेचक के बीच १:२ का अनुपात रखिए।

४१. लोक-प्रचलित तथा उपक्रमात्मक प्राणायाम को प्रत्येक व्यक्ति किसी भी आसन में बैठे हुए अथवा चलते हुए कर सकता है। इससे अवश्य लाभ होगा; परन्तु जो लोग इसे निर्धारित विशेष विधि से करते हैं, उनका प्राणायाम शीघ्र फलित होगा।

४२. कुम्भक के समय को धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए। पहले सप्ताह में चार सेकेंड तक, दूसरे सप्ताह में आठ सेकेंड तक, तीसरे सप्ताह में बारह सेकेंड तक इस भाँति बढ़ाते हुए अपनी पूरी शक्ति-भर कुम्भक करने का अभ्यास कीजिए।

४३. अपने अभ्यास में सदा युक्ति से काम लीजिए। यदि कोई विशेष अभ्यास आपके शरीर के अनुकूल नहीं जान पड़ता, तो सम्यक विचार तथा अपने गुरु की सम्मति से उसे बदल दीजिए। यही युक्ति है। जहाँ युक्ति है, वहाँ सिद्धि, भुक्ति तथा मुक्ति हैं।

४४. पूरक, कुम्भक तथा रेचक की व्यवस्था इस सुन्दर ढंग से कर लीजिए कि प्राणायाम की किसी भी अवस्था में श्वास घुटने या किसी तरह के कष्ट का अनुभव न हो। इस तरह प्राणायाम कभी न कीजिए कि प्राणायाम की दो क्रमिक आवृत्तियों में ही आपको सामान्य श्वास लेने की आवश्यकता पड़ जाये। पूरक, कुम्भक और रेचक का समय-निर्धारण युक्तिपूर्वक करना चाहिए। इसमें यथोचित सावधानी बरतिए। इससे विषय सफल तथा सहज हो जायेगा।

४५. रेचक की अवधि को अनावश्यक रूप से दीर्घ न कीजिए। यदि रेचक में अधिक समय लगायेंगे, तो उसके बाद का कुम्भक उतावली में होगा और प्राणायाम का ताल टूट जायेगा। पूरक, कुम्भक तथा रेचक—इन तीनों को इस प्रकार समंजित करें कि आपको असुविधा अनुभव न हो और आप न केवल एक प्राणायाम अपितु पूर्ण प्रक्रिया या प्राणायाम के अपेक्षित चक्र भी पूरा कर सकें। अनुभव तथा अभ्यास से आप इसे ठीक-ठीक करने लगेंगे। अभ्यास करने से पूर्णता प्राप्त होती है। नियमित रहिए। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुम्भक के अन्त में आपको फेफड़ों के ऊपर प्रभावकारी अधिकार होना चाहिए जिससे आप रेचक सहज में तथा पूरक के ही अनुपात में कर सकें।

४६. सूर्यभेद तथा उज्जाई से गरमी पैदा होती है। शीतकारी तथा शीतली शीतल करती हैं। भस्त्रिका से शरीर का साधारण तापमान स्थिर रहता है। सूर्यभेद से वायु-आधिक्य, उज्जाई से श्लेष्मा, शीतकारी और शीतली से पित्त तथा भस्त्रिका से ये तीनों ही दूर होते हैं।

४७. सूर्यभेद या उज्जाई का अभ्यास शीतकाल में करना चाहिए। शीतकारी तथा शीतली का अभ्यास ग्रीष्म ऋतु में करना चाहिए। भस्त्रिका का अभ्यास सभी ऋतुओं में कर सकते हैं। जिनका शरीर शीतकाल में भी गरम रहता है, वे शीतली तथा शीतकारी का अभ्यास शीत ऋतु में भी कर सकते हैं।

४८. जीवन का लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार । "शरीर तथा इन्द्रियों के संयम, सद्‌गुरु की सेवा, वेदान्त-श्रवण तथा सतत निदिध्यासन के द्वारा इसकी प्राप्ति होती है" (निरालम्बोपनिषद्) । "यदि आप सचमुच ही निष्कपट हैं तथा यदि आप आशु निश्चित सफलता चाहते हैं, तो आपको आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि की नियमित दिनचर्या रखनी चाहिए। आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति, सत्संगति तथा सारी वासनाओं का पूर्ण त्याग एवं प्राणायाम ही मन को नियन्त्रित करने के प्रभावकारी साधन हैं" (मुक्तिकोपनिषद्) ।

४९. मैं आपसे एक बार पुनः कह दूँ कि आसन, प्राणायाम, ध्यान, ब्रह्मविचार, सत्संग, एकान्त, मौन, निष्काम कर्मये सभी आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए परमावश्यक हैं। हठयोग के बिना राजयोग में सिद्धि प्राप्त करना कठिन है। कुम्भक के अन्त में आपको सारे विषयों से मन को हटा लेना चाहिए। शनैः शनैः अभ्यास के द्वारा आप राजयोग में प्रतिष्ठित हो जायेंगे।

५०. कुछ साधक वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने को ज्ञानी समझ बैठते हैं। वे आसन, प्राणायाम आदि की उपेक्षा करते हैं। जब तक साधनचतुष्टय के षट्सम्पत-शम, दम आदि में पूर्णता न आ जाये, तब तक उन्हें भी इनका अभ्यास करते रहना चाहिए।

५१. झिझकें नहीं। गुरु की प्रतीक्षा न कीजिए जो आपके निकट बैठ कर प्रतिदिन बहुत दिनों तक आप पर निगरानी रखें। यदि आप निष्कपट, नियमित तथा विधिवत् अभ्यास करने वाले हैं और यदि आप इस पुस्तक के नियमों तथा उपदेशों का अनुसरण बड़ी सावधानीपूर्वक करते हैं, तो जरा भी कठिनाई नहीं होगी। आप निस्सन्देह सफलता प्राप्त करेंगे। प्रारम्भ में थोड़ी भूल हो सकती है; परन्तु इससे कोई चिन्ता नहीं। अनावश्यक ही सन्त्रस्तन होइए। अभ्यास को न छोड़िए। आपको स्वतः ही पता चल जायेगा कि किस तरह समायोजन करना चाहिए। सामान्य बुद्धि, सहज प्रवृत्ति तथा आत्मा की कर्णभेदी अन्तर्वाणी से आपको इस मार्ग में सहायता मिलेगी। अन्ततः सब-कुछ सहज हो जायेगा। इसी क्षण से अभ्यास करना आरम्भ कर दीजिए तथा वास्तविक योगी बन जाइए।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

परिशिष्ट

१. मणिपूरक चक्र पर धारणा

मणिपूरक चक्र को बहुधा उदरीय मस्तिष्क भी कहते हैं। यह स्नायु मण्डल का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जिसका सम्बन्ध प्रथम स्वायत चेता सहति (सिंपैथेटिक नर्वस सिस्टम) से है। यह ऊपरी जठर-प्रदेश में स्थित है जो उदर-गर्त के पीछे मेरुदण्ड के दोनों ओर स्थित है। मनुष्य के प्रमुख आभ्यन्तर अंगों पर इसका नियन्त्रण है। साधारणतः इसके विषय में जो अभिज्ञात है, इसकी भूमिका उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। भावनाओं के नियन्त्रण तथा विभिन्न शारीरिक कार्यों के संचालन में यह महत्त्वपूर्ण काम करता है। यह श्वेत तथा भूरे मस्तिष्क-द्रव्य से बना है। यह शरीर के अतीव मार्मिक अंगों में एक है। घूँसेबाजी करने वाले यह अच्छी तरह जानते हैं कि मणिपूरक चक्र पर एक घूँसा प्रतिद्वन्द्वी को बेहोश या कम-से-कम असहाय बनाने का सुलभ साधन है। यह प्राण का भण्डार है। यह विद्युत् गृह है। यह शरीर के सारे आधारों में, जो संख्या में १६ हैं, प्रमुख है। यह सुविज्ञात है कि मणिपूरक चक्र पर गहरी चोट लगने से कितने ही लोग तत्काल मर गये। मणिपूरक चक्र स्नायु मण्डल का अक्षरशः

सूर्य है। जब यह सूर्य समरूप से विभासित रहता है, तब सारा शरीर सन्तुलित रहता है। यह शरीर के सारे भागों में बल तथा शक्ति विकीर्ण करता है। प्राणायाम के द्वारा जब विचार तथा प्राण इस केन्द्र की ओर प्रवाहित रहते हैं, तब वे उसमें अन्तर्हित कान्ति को उद्दीप्त तथा जाग्रत करते हैं।

पचास या सिद्धासन में सीधे बैठ जाइए। आँख बन्द कर लीजिए। जितनी देर तक आप आराम से खींच सकें, उतनी देर तक वाम रामका पुट से धीरे-धीरे श्वास खींचिए। दाहिने अंगूठे से दाहिने कापुट का बन्द रखिए। ॐ का मानसिक जप कीजिए। तब श्वास को रोकिए। ध्यान को अच्छी तरह मणिपूरक चक्र पर जाइए। मन को वहाँ सिर कीजिए विचार को वहाँ केन्द्रित कीजिए। मन पर अनावश्यक तनाव डालिए अथवा किसी प्रकार का अधिक श्रम न कीजिए। कुम्भक के द्वारा को मणिपूरक चक्र की ओर अभिज्ञतापूर्वक संचरित कीजिए। भावना कीजिए मैं प्राण, सुख, आनन्द, बल, वीर्य तथा प्रेम को श्वास द्वारा धारण कर रहा हूँ।" तब दाहिने नासिका पुट से धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़िए। तब दाहिने नासिका -पुट से श्वास लीजिए, उसे पूर्ववत् रोकिए तथा बायें नासिका पुट से छोड़िए। प्रातः समय इस क्रिया को १२ बार कीजिए। - भय, उदासी, दुर्बलता तथा अन्य अवांछनीय भावनाएं, जो आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं, विलीन हो जायेंगी। आत्म-साक्षात्कार में अधिकाधिक सफलता के प्रति आपका विश्वास दृढ हो जायेगा।

२. पंच-धारणा

(क) पृथ्वी धारणा

पाँच तत्त्व है पृथ्वी, अपस, अग्नि, वायु तथा आकाश पंचतत्त्वात्मक शरीर के लिए पंचविध धारणाएँ हैं। पैर से घुटने तक पृथ्वी का प्रदेश है। इसकी आकृति चौकोण है, रंग पीला है। संस्कृत " इसका बीजाक्षर है। इस पर ध्यान करते हुए साधक को नित्य प्रति दो घण्टे तक वहाँ धारणा करनी चाहिए। इससे वह पृथ्वी तत्व पर विजय प्राप्त कर लेता है। पृथ्वी तत्व पर विजय प्राप्त करने के कारण मृत्यु उसको कष्ट नहीं पहुँचाती है।

(ख) अम्भासी धारणा

घुटने से गुदा तक अपमस् (जल) का क्षेत्र है। अपस् अर्धचन्द्र है। इसका रंग श्वेत है। इसका बीजाक्षर 'व' है। श्वास के साथ बीजाक्षर का जप करते हुए उसे अपस-प्रदेश में ले जा कर भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए जो चतुर्भुजी, मुकुटधारी, पीताम्बरधारी तथा अव्यय हैं। इस स्थान पर दैनिक दो घण्टे धारणा के अभ्यास से वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। तब उसे जल से भय नहीं रहता है।

(ग) आग्नेयी धारणा

गुदा से हृदय तक अग्नि का प्रदेश कहा जाता है। अग्नि त्रिकोणाकार है, रंग लाल है तथा इसका बीजाक्षर 'र' है। 'र' के साथ श्वास को लेते हुए अग्नि- प्रदेश में ले जाइए तथा रुद्र पर ध्यान कीजिए जो त्रिनेत्रधारी हैं, सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं तथा जिनका रंग दोपहर के सूर्य के समान है। नित्य प्रति वहाँ दो घण्टे धारणा करने से वह अग्नि से नहीं जलता अग्नि खड्ड में गिरने पर भी वह जलता नहीं।

(घ) वायव्य-धारणा

हृदय से भ्रूमध्य तक वायु का प्रदेश है। यह काले रंग का है तथा 'य बीजाक्षर द्वारा विभासित होता है। वायु प्रदेश से श्वास को ले जाते हुए साधक को सर्वज्ञ ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। योगी वायु द्वारा मृत्यु को प्राप्त नहीं करता।

(ङ) आकाश धारणा

भौहों के बीच से शिर की चोटी तक आकाश का प्रदेश है। यह गोलाकार है, धूम रंग का है तथा 'ह' बीजाक्षर से विभासित होता है। आकाश-प्रदेश से श्वास ले जाते समय साधक को सदाशिव पर ध्यान करना चाहिए। इस धारणा के द्वारा साधक शरीर के साथ ऊपर उठने लगता है। योगी सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।

३. योगी भुशुण्ड की कहानी

भुशुण्ड चिरंजीवी योगियों में से एक हैं। वे प्राणायाम-विज्ञान के पूर्ण ज्ञाता समझे जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि महामेरु पर स्थित कल्पवृक्ष की दक्षिणी शाखा पर उनका एक पर्वताकार नीड़ है। इसी नीड़ में काकभुशुण्ड जी रहते हैं। वे योगियों में से सबसे अधिक आयु वाले हैं। वे त्रिकाल ज्ञानी हैं। वे चिरकाल तक समाधि में चले जाते हैं। वे निष्काम हैं। उन्हें परम शान्ति तथा ज्ञान प्राप्त है। चिरंजीवी होने के कारण वे आज भी वहीं हैं। वे अलम्बुषा नामक ब्रह्म-शक्ति की बहुत दिनों तक उपासना करते थे। कल्पवृक्ष के उस घोंसले में भुशुण्ड कई युगों से, बल्कि कई कल्पों से रहते आ रहे हैं। प्रलय के समय वे अपना घोंसला त्याग देते हैं। पंच धारणाओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान है। इन धारणाओं के द्वारा उन्होंने इन पंच-तत्त्वों से अपने को अभेद्य बना लिया है। ऐसा कहा जाता है कि जब सब-के-सब १२ आदित्य अपनी प्रज्वलित रश्मियों से इस पृथ्वी को जलाने लगते हैं, उस समय वे 'अपस्-धारणा' के द्वारा आकाश को चले जाते हैं। जब प्रलयकालीन धाराएँ पर्वतों को चकनाचूर करने लगती हैं, वे 'अग्नि-धारणा' के द्वारा आकाश में स्थित रहते हैं। जब महामेरु सहित जगत् जल में रहता है, वे 'वायु-धारणा द्वारा स्वच्छन्द रूप से उतराते रहते। है। महाप्रलय के समय वे दूसरे ब्रह्मा के सृष्टि उत्पन्न करने तक ब्राह्मीपद में सुषुप्ति-अवस्था में पड़े रहते हैं। सृष्टि के प्रकट होने पर वे पुनः अपने स्थान पर नीड़ में चले जाते हैं। दूसरे कल्प के प्रारम्भ में उनके संकल्प से महामेरु के ऊपर कल्पवृक्ष उसी प्रकार उत्पन्न हो जाता है।

४. आन्तरिक उद्योगशाला

जो भोजन आप खाते हैं, उसे भूयात्य (नाइट्रोजनस्) तत्त्वों, प्रोभूजेय (प्रोटीन), वसा अथवा उदांगार (हाइड्रोकार्बन्स) जैसे घी आदि तथा चावल, चीनी आदि प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट्स) होते हैं। प्रोभूजेय (प्रोटीन्स) शरीर के ऊतकों तथा मांसपेशियों का निर्माण करते हैं। प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट्स) शक्ति उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के लवण भी हैं। भोजन- कण जब आन्त्र-नाल अथवा आन्त्र-नली से हो कर जाता है, तब विविध प्रकार के यूष यथा मुख में लार, उदर में जठर-रस, पित्त, अग्राशयीयूष तथा आन्त्रों में आन्त्र-रस अथवा आन्त्र-यूष अपना प्रभाव डालते हैं। लार श्वेतसार पर प्रभाव डालता है। यह उसे शर्करा में रूपान्तरित कर देता है। इससे आगे यह कार्य जठर-रस तथा अग्राशयीयूष आन्त्रों में करते हैं। पित्त वसा पर प्रभाव डालता है। जठर-रस तथा अग्राशयीयूष प्रोभूजेय पर प्रभाव डालते हैं। सारी वस्तु दुग्ध-सदृश रस में रूपान्तरित हो जाती है जिसे वसा लसीका कहते हैं। इस वसा-लसीका को वसा लसीका-वाहिनी नलिकाएँ अवशोषण करती हैं और यह रुधिर में

मिश्रित हो जाता है। हृदय के दक्षिण पार्श्व में अशुद्ध रुधिर रहता है। यह अशुद्ध रुधिर फुफ्फुसों में शोधन के लिए भेजा जाता है और शोधित होने के पश्चात् हृदय से वाम पार्श्व में वापस लाते हैं और वहाँ से वह महाधमिनी के द्वारा ।मारे शरीर में उदंचन करते हैं। रुधिर केशिकाओं में लसीका के रूप में निस्रावण करता है और शरीर के ऊतकों तथा कोशाणुओं को तर तथा परिपुष्ट करता है और अशुद्ध रुधिर शिराओं द्वारा हृदय के दक्षिण पार्श्व में वापस पहुँचाया जाता है।

भोजन का अपशिष्ट उत्पाद बृहदान्त्र से, जो छह फीट लम्बी है, मलाशय में ले जाया जाता है जहाँ वह विश के रूप में रहता है। जब स्नायविक आवेग मेरुरज्जु में स्थित मलोत्सर्ग-केन्द्र से मलाशय में पहुँचता है. तो वह प्रातः काल अन्न-नाल के अन्तस्थ द्वार गुदा से निष्कासित हो जाता है।

कमर में दोनों ओर वृक्क हैं जो रुधिर से मूत्र को अलग करते हैं तथा उसे दो मूत्रवाहिनी नलिकाओं द्वारा मूत्राशय में भेज देते हैं। मूत्राशय से मूत्र मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकाला जाता है।

प्रमस्तिष्क या अग्रमस्तिष्क, अनुमस्तिष्क या पश्चमस्तिष्क, मेरुरज्जु तथा अनुसंवेदी स्नायुओं द्वारा स्नायु तन्त्र का निर्माण होता है। मस्तिष्क में सुनने, देखने, सूँघने, चलने, बोलने आदि के लिए विविध केन्द्र हैं। उँगली में जब बिच्छू डंक मारता है, तब विभिन्न प्रेरणाएँ हाथ से संवेदी स्नायुओं द्वारा मेरु-रज्जु में ले जायी जाती हैं तथा वहाँ से मस्तिष्क को पहुँचती हैं। मन जिसने मस्तिष्क में अपना स्थान बनाया है, प्रतिक्रिया करता है। वह अनुभव करता है। मेरु-रज्जु से एक प्रेरणा चलती है और वहाँ से प्रेरक स्नायुओं द्वारा हाथ को पहुँचती है। तत्क्षण ही हाथ बिच्छू से अलग कर दिया जाता है। यह सारा कार्य एक निमेष में ही हो जाता है। अनुसंवेदी स्नायु शरीर के आन्तरिक अंगों-उदर, यकृत, प्लीहा, हृदय आदिको आदेश पहुँचाती हैं।

अब मैं वर्णन करूँगा कि प्राणाधार तरल द्रव्य-वीर्य किस प्रकार निर्मित होता है। वृषणकोषों में जो दो वृषण अथवा अण्ड हैं, वे उदासर्जक ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। जिस प्रकार मखुमक्खियाँ मधुकोष में बूंद-बूंद कर मधु संग्रह करती हैं, उसी प्रकार वृषणों के कोशाणु रक्त से बूंद-बूँद कर वीर्य के उदासर्जन के विशिष्ट गुण-धर्म से सम्पन्न हैं। तब इस तरल द्रव्य को दो शुक्र--प्रणालियाँ या नलिकाएँ शुक्र-आशयक या रेतोधान कहलाने वाली दो थैलियों या वीर्य के भण्डारों में ले जाती हैं जो दोनों ओर एक-एक हैं। कामोत्तेजना के समय, इस वीर्य को दो छोटी नलिकाएँ, जिन्हें निषेचन प्रणाली कहते हैं, मूत्र मार्ग या मूत्र नली के पुरःस्थ भाग में डालती हैं जहाँ यह पुरस्थ-ग्रन्थि द्वारा स्रावित पुरस्थ-रस में मिल जाता है।

इस आन्तरांगों का वास्तविक संचालक कौन है? किसने इस जटिल, आन्तरिक भव्य यन्त्रावली की रचना की है? प्रिय मित्र ! इन चमत्कारिक यन्त्रावलियों की, हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क आदि की संरचना से जो ईश्वरीय गरिमा तथा ईश्वरीय महिमा प्रदर्शित होती है, उसके विषय में एक क्षण गम्भीरतापूर्वक चिन्तन कर आप विस्मय तथा आश्चर्य में नहीं पड जाते? वे कितने सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करते हैं। कौन भोजन को रुधिर में रूपान्तरित करता है? कौन भोजन को धमनियों में भेजता है? वह ईश्वर ही है। उनकी अन्तर्वासी उपस्थिति को अनुभव कीजिए। उन्हें अपनी मूक श्रद्धांजलि अर्पित कीजिए। इस अपनी प्रतिकृति- अपने निवास-गृह -रूप, इस आश्चर्यजनक शरीर के, इस नवद्वारपुरी के रचयिता प्रभु की जय हो! जय हो !!

५. यौगिक आहार

जो आहार योगाभ्यास तथा आध्यात्मिक प्रगति में सहायक होता है. उसे यौगिक आहार की संज्ञा ठीक ही दी गयी है। आहार का मन के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध है। मन अन्न के सूक्ष्मतम भाग से बनता है। उद्दालक ऋषि अपने

पुत्र श्वेतकेतु को इस प्रकार उपदेश देते हैं "अन्नमतिं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीष भवति यो मध्यमस्तन्मासं योऽणिष्ठस्तन्मनः खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है; जो मध्यम भाग है, वह मांस हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है, वह मन हो जाता है" (छान्दोग्य उपनिषद् ६-५- १) | आप छान्दोग्य उपनिषद् में दोबारा पायेंगे "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः- आहार-शुद्धि होने पर अन्तः करण की शुद्धि होती है; अन्तःकरण की शुद्धि होने पर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों की निवृत्ति हो जाती है" (छां. ७-२६-२) ।

आहार के तीन भेद होते हैं—सात्त्विक आहार, राजसिक आहार तथा तामसिक आहार। दूध, फल, अन्न, मक्खन, पनीर, टमाटर, पालक आदि सात्विक आहार हैं। इनसे मन शुद्ध होता है। मछली, अण्डे, मांस आदि राजसिक आहार हैं। इनसे मनुष्य की कामवासना बढ़ती है। गोमांस, प्याज, लहसुन आदि तामसिक आहार हैं। ये मन को आलस्य तथा क्रोध से भर डालते हैं।

गीता में भगवान् कृष्ण करते हैं।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
.... तेषां भेदमिमं श्रुणु।।
आयु सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।
यातयाम गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।

"सभी प्राणियों को तीन प्रकार का आहार प्रिय होता है। उनके भेट सुनो। आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख तथा प्रीतिवर्धनकारी एवं सरस, स्थिर तथा प्रियकर भोजन सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। अत्यन्त कटु, अम्ल, लवणयुक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष तथा दाहकारक एवं कष्ट, शोक तथा रोगजनक आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका. रस-रहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट तथा अपवित्र है, वह तामस पुरुष को प्रिय है" (गीता १७-७, ८, ९ तथा १०) ।

आहार के दूसरे चार भेद हैं। पेय तरल पदार्थ जिन्हें पिया जाता है, चर्व्य जो चबा कर खाया जाता है, चोष्य जिसे चूस कर खाया जाता है तथा लेह्य जो वस्तु चाट कर खायी जाये। भोजन को मुँह में भली-भाँति चबाना चाहिए, तभी वह शीघ्र पचाया जा सकता है और शरीर में सहज में अन्तर्लीन तथा आत्मसात् किया जा सकता है।

आहार ऐसा होना चाहिए जो शरीर की कार्यक्षमता तथा आरोग्य को बनाये रखे। मनुष्य का स्वास्थ्य अन्य बातों की अपेक्षा पौष्टिक भोजन पर ही अधिक निर्भर है। पौष्टिक आहार की कमी के कारण ही अनेक प्रकार के. आन्त्ररोग, संसर्गज रोगों की सुप्रभाव्यता में वृद्धि, रोगों के प्रतिरोध की तेजस्विता तथा शक्ति की कमी, सुखण्डी रोग, प्रशीताद (स्कर्वी), रक्तक्षीणता या रक्ताल्पता (बेरी-बेरी) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यह स्मरणीय है कि बलवान् स्वस्थ शरीर अथवा रोग-जर्जरित दर्बल शरीर के निर्माण में जलवायु की अपेक्षा भोजन की अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यदि व्यक्ति शारीरिक कार्यक्षमता तथा सुस्वास्थ्य बनाये रखना चाहता है, तो उसके लिए आहार-विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। उसे अपने परिवार के लिए कुछ खाद्य पदार्थों से सस्ते सुसन्तुलित आहार का चुनाव कर लेना चाहिए। तभी परिवार के सभी सदस्य स्वस्थ एवं निरोग रहेंगे। आवश्यकता है सुसन्तुलित

आहार की, मसालेदार आहार की नहीं। मसालेदार आहार से यकृत, वृक्क तथा अग्न्याशय की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। सुसन्तुलित आहार मनुष्य के विकास तथा उसकी कार्यक्षमता की वृद्धि में सहायक होता है, उसके शरीर का भार बढ़ाता है तथा उसकी क्षमता, शक्ति तथा उत्साह के उच्च स्तर को बनाये रखता है। मनुष्य वैसा ही होता है जैसा वह खाता है। यह सत्य ही है।

भोजन की आवश्यकता दो उद्देश्यों के लिए होती है : (१) शरीर में ताप को बनाये रखने के लिए, तथा (२) नये कोशाणुओं के सर्जन और शरीर के उपयोग से नष्ट शक्ति की क्षतिपूर्ति के लिए। खाद्य-पदार्थों में प्रोभूजिन (प्रोटीन), प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट), उदांगार (हाइड्रोकार्बन), भास्वीय (फास्फेट), लवण, विविध प्रकार के क्षार, जल, जीवति (विटामिन) आदि होते हैं। प्रोभूजिन (प्रोटीन) पदार्थ नेत्रजनीय होते हैं। वे शरीर के ऊतकों (टिस्सुओं) का सर्जन करते हैं। ये दाल, दूध आदि में प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। ये 'ऊतक-निर्माता' कहलाते हैं। प्रोभूजिन संश्लिष्ट प्रांगारिक मिश्रण है जिसमें प्रांगार (कार्बन), उदजन (हाइड्रोजन), ओषजन (आक्सीजन) तथा नेत्रजन (नाइट्रोजन) एवं कभी-कभी शुल्वारि (गन्धक), भास्वर (फास्फोरस) तथा अयस् होते हैं। श्वेतसार (स्टार्च) पांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट) है। वे चावल में प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। प्रागोदीय (कार्बोहाइड्रेट्) 'शक्ति-सर्जक' या 'तापदायक' हैं। प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट) श्वेतसार (स्टार्च), शर्करा अथवा निर्यास (गोंद) जैसा पदार्थ है और इसमें प्रांगार (कार्बन), उद्जन (हाइड्रोजन) तथा ओषजन (आक्सीजन) होते हैं। उदांगार (हाइड्रोकार्बन) अथवा स्नेह (वसा) घी तथा वनस्पति तेलों में विद्यमान होता है। वसा मधुरि (ग्लिसरीन) तथा स्नेहीय अम्ल का मिश्रण है। मानव शरीर यन्त्र को स्नेहन की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। मक्खन, मलाई, पनीर, जैतून का तेल, मूँगफली का तेल, सरसों का तेल स्नेहन के लिए उत्तम हैं।

सुसन्तुलित आहार वह है जिसमें शरीर तथा मन को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने तथा उन्हें सामंजस्य में रखने वाले विविध खाद्य-तत्त्व समुचित अनुपात में हों। दूध पूर्ण आहार है; क्योंकि इसमें समस्त पौष्टिक द्रव्य समुचित अनुपात में होते हैं। प्रोभूजिन (प्रोटीन), वसा तथा प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट) समुचित अनुपात में होने चाहिए। वे ठीक प्रकार के भी होने चाहिए। यदि आहार में एक वस्तु अत्यधिक तथा दूसरी वस्तु स्वल्प हो, यदि इससे खाद्य के आवश्यक घटकों में से एक अथवा एकाधिक वस्तुओं के न्यून अथवा बाहुल्य होने से किसी-न-किसी रूप से दोषपूर्ण हो, तो उसे कुसन्तुलित अथवा सदोष आहार कहते हैं। यह कुपोषण, रुद्ध विकास, शारीरिक दोष आदि का कारण बनता है। कुपोषण से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। यदि भोजन पुष्टिकर, स्वास्थ्यकर तथा सुसन्तुलित हो, तो व्यक्ति की सहनशीलता तथा शारीरिक कार्यक्षमता अच्छी रहती है। यदि उसकी शारीरिक कार्यक्षमता अच्छी हो, तो वह अधिक कार्य कर सकता । कुछ लोग दूध को मासाहार मानते हैं, जब कि कुछ अन्य लोग अण्डे को है। शाकाहार समझते हैं। ये सभी लोग भ्रम में हैं। दूध शाकाहार है, जब कि अण्डा आमिषाहार है। यह विद्वान् ऋषियों की सुस्पष्ट घोषणा है। योग के साधकों को अण्डे का परित्याग करना चाहिए। दूध, मक्खन, पनीर, फल, बादाम, टमाटर, गाजर तथा शलजम में सभी पौषणिक तत्त्व पाये जाते हैं।

मुख की लार, उदर का आमाशय रस, अग्न्याशयी रस, पित्त तथा लघ्वान्त्र का आन्त्र-रस (आन्त्र-यूष) महत्त्वपूर्ण पाचक रस हैं। लार क्षारीय होता है। यह लार ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होता है। यह श्वेतसारों (स्टार्च) को पचाता है। आमाशय रस की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है। इसमें नमक का तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) होता है। यह जठर-ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होता है। यह प्रोभूजिन (प्रोटीन) को पचाता है। अग्न्याशयी-यूष श्वेतसारों (स्टार्च), प्रोभूजिनों (प्रोटीन) तथा वसा को पचाता है। इसमें तीन प्रकार के पाचक किण्व होते हैं। यह अग्न्याशयों द्वारा बनता है। पित्त यकृत द्वारा स्रावित होता है। यह वसाओं को पचाता है। इन पाचक रसों की क्रिया से खाद्य पदार्थ वसालसीका में बदल जाता है जिसे लघ्वान्त्र की वसालसीकावाहिनियाँ अवशोषण करती हैं।

पेटू तथा स्वादुलोलुप व्यक्ति योग में सफलता प्राप्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते। जो संयत आहार ग्रहण करता है, जिसने अपने आहार पर नियन्त्रण कर लिया है, वही योगी बन सकता है। यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

"हे अर्जुन! यह योग न तो अत्यन्त अधिक भोजी का और न नितान्त अनाहारी का तथा न अत्यन्त निद्रालु का और न नितान्त अनिद्राभ्यासी का सिद्ध होता है। जो यथायोग्य आहार और विहार करने वाला है, जो कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाला और यथायोग्य शयन करने तथा जागने वाला है, उसका योग दुःखनिवारण में सक्षम होता है" (गीता : ६-१६ तथा १७) ।

आधा पेट रुचिकर, पौष्टिक तथा मधुर आहार लीजिए; चौथाई पेट शुद्ध जल से भरिए तथा शेष चौथाई भाग को वायु (गैस) के प्रसार के लिए रिक्त छोड़ दीजिए।

जो पदार्थ दुर्गन्धयुक्त, बासी, सड़े-गले, किण्वित दूषित, दोबारा पकाये गये, पिछली रात के रखे गये हों; उन सबको त्याग देना चाहिए। भोजन सरस, हलका, मृदु, स्वास्थ्यकर, सुपाच्य तथा पौष्टिक होना चाहिए। जो खाने के लिए ही जीता है, वह पापी है; जो जीने के लिए खाता है, वह सन्त है। क्षुधा होने पर भोजन भली-भाँति पचता है। यदि बुभुक्षा न हो, तो कुछ न खाइए, पेट को आराम दीजिए।

अधिक मात्रा में भोजन पेट से अत्यधिक काम लेता है। अनियमित भूख उत्पन्न करता है तथा जिह्वा को दुस्तोषणीय बना देता है। तब जिह्वा को प्रसन्न करना बहुत कठिन हो जाता है। मनुष्य ने केवल अपने स्वाद को तृप्त करने के लिए विविध प्रकार के पकवानों का आविष्कार किया है। इससे उसका जीवन बहुत ही जटिल तथा दयनीय बन जाता है। इन्द्रियों से विमोहित तथा अज्ञानी होते हुए भी वह अपने को सभ्य तथा संस्कृत बतलाता है। किसी नये स्थान पर जाने से जब वह अपना मन पसन्द भोजन नहीं पाता, तब उसका मन अशान्त हो जाता है। क्या यही सच्चा बल है? वह अपनी जिह्वा का पूर्ण दास बन बैठता है। यह बुरा है। भोजन में सरल तथा स्वाभाविक बनिए। जीने के लिए खायें, न कि खाने के लिए जीयें। इससे आप वास्तव में सुखी रह कर योगाभ्यास के लिए अधिक समय दे सकेंगे।

जो यौगिक साधक केवल ध्यान में ही अपना समय लगाता है, उसे 'ही कम भोजन की आवश्यकता होती है। एक या डेढ़ सेर दूध तथा बहुत कुछ फल ही पर्याप्त हैं; परन्तु जब वह काम करने के लिए सभा-मंच पर आता है, तब उसे भी अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। जो अधिक शारीरिक श्रम करता है, उसे अधिक भोजन की आवश्यकता हुआ करती है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए मांस किंचित् भी आवश्यक नहीं है। मांस भक्षण स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है। इससे रोग-समूह — जैसे पट्टकृमि (टेपवर्म), श्वेतिमेह (अल्बुमिनोरिया) तथा वृक्क के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। अन्ततः मनुष्य को इस पृथ्वी पर स्वल्प वस्तुओं की ही आवश्यकता है। भोजन के लिए पशु-वध महान् पाप है। अहंकार तथा ममता की भावना का हनन करने के स्थान में अज्ञानी लोग देवी के लिए बलि देने के बहाने निर्दोष पशुओं को मारते हैं; किन्तु वास्तव में वे ऐसा अपनी जिह्वा तथा स्वाद को तृप्त करने के लिए करते हैं। वीभत्स! कितना पाशवी कृत्य है यह! "अहिंसा परमोधर्मः " — अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है जिससे साधक को

सम्पन्न होना चाहिए। हमें सभी जीवों के प्रति आदर का भाव रखना चाहिए। प्रभु यीशु कहते हैं- "धन्य हैं वे जो दयामन्त हैं; क्योंकि उन पर भी दया की जायेगी।" प्रभु यीशु तथा महावीर ने उच्च स्वर में यह घोषणा की— "प्रत्येक प्राणी को आत्मवत् समझो, किसी को हानि न पहुँचाओ।" कर्म का नियम अटल, कठोर तथा अपरिवर्तनीय है। यदि आप दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं, तो वह आप पर प्रतिघात करेगा और दूसरों को सुख पहुँचाते हैं, तो वह आपके सुख की वृद्धि कर आपके पास आयेगा। लेडी मार्गरीटा चिकित्सालय के चिकित्सक डा. जे. ओल्डफील्ड लिखते हैं: "आज सबके हाथों में रासायनिक तथ्य प्राप्त है जिसका कोई भी प्रतिवाद नहीं कर सकता कि वनस्पति जगत् की उपज में वे सारे तत्त्व वर्तमान हैं जो मानव जीवन के पूर्णतम सम्पोषण के लिए आवश्यक हैं। मांस अस्वाभाविक भोजन है, अतः यह सहज ही कार्यात्मक बाधा उत्पन्न करता है। आधुनिक सभ्यता में जिस रूप में यह खाया जाता है, वह कर्कटार्बुद (कैंसर), क्षय, ज्वर, आन्त्र-कृमि आदि जैसे सहज ही व्यक्ति में हस्तान्तरणीय भयानक रोगों में बृहत्परिमाण में सन्दूषित होता है। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं कि मांसाहार उन रोगों की उत्पत्ति के अत्यन्त गम्भीर कारणों में से एक है जिनसे उत्पन्न होने वाले प्रत्येक सौ व्यक्तियों में निन्यानवे व्यक्ति काल-कवलित होते हैं।"

मांस भक्षण तथा मदात्यय घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। मांसाहार से प्रत्याहार करने से मदिरा की लालसा का सहज ही अन्त हो जाता है। जो लोग मांसाहार करते हैं, उनके लिए सन्तति-निग्रह अतीव दुस्साध्य हो जाता है। उनके लिए मनोनिग्रह सर्वथा असम्भव हो जाता है। ध्यान दें कि मांसभक्षी व्याघ्र कितना उग्र होता है और वनस्पति पर निर्वाह करने वाले गाय तथा हाथी कितने मृदु और शान्त होते हैं, मांस का दुष्प्रभाव मस्तिष्क-कोष्ठों पर सीधा पड़ता है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मांसाहार का त्याग प्रथम सोपान है। यदि पेट मांसाहार से भरा हुआ है, तो दिव्य प्रकाश का अवतरण नहीं होगा। अधिक मासाहारी देशों में कर्कटार्बुद (कैंसर) से मरने वालों की संख्या अत्यधिक है। शाकाहारी लोग वृद्धावस्था तक अपना स्वास्थ्य अक्षत बनाये रखते है। पाश्चात्य जगत् में भी आजकल डाक्टर चिकित्सालयों में रोगियों को शाकाहार पर रखते हैं। इससे वे अति शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

यूनान देश के ऋषि पाइथागोरस ने मांसाहार को पापमय आहार कह कर सदोष ठहराया है। जरा सुनिए, वह क्या कहते हैं: "हे मर्त्य मानव! सावधान, पापमय आहार से अपने शरीर को कलुषित न बनाओ। अन्न हैं, फल हैं, जिनके भार से वृक्ष की शाखाएँ नत हो चली हैं तथा अंगूर की लताओं में सरस अंगूर के गुच्छे लगे हुए हैं। मधुर शाक तथा तरकारियाँ हैं जिन्हें जठराग्नि स्वादिष्ट तथा मृदु बना सकती है। तुम्हें न तो दूध की, न पर्णसगन्धा के सुगन्धित पुष्प की सुरभि को ही नकारना है। यह उदार वसन्धुरा तुम्हें प्रचुर शुद्ध भोजन प्रदान करती है तथा ऐसे आहारों को प्रस्तुत करती है जो बिना पशु-वध तथा रक्तपात के ही सुलभ हैं।"

यदि आप मांस-मत्स्यादि का भक्षण बन्द करना चाहते हैं, तो अपनी आँखों से भेड़-बकरियों का वध करते समय उनकी दयनीय तथा हाथ-पैर मारने की दशा को देखिए। तब आपके हृदय में करुणा तथा सहानुभूति उत्पन्न होगी और आप मांसाहार के त्याग का निश्चय करेंगे। यदि इस प्रयास आपको विफलता मिले, तो अपने वातावरण को बदल डालिए तथा किसी शाकाहारी आवास गृह में रहिए जहाँ आपको मांस-मछली न मिल सके। ऐसे समाज में रहिए जहाँ केवल शाकाहारी भोजन ही उपलब्ध हो। सदा मांसाहार के अवगुणों तथा शाकाहार के लाभ का चिन्तन कीजिए। यदि इससे भी आपको इस आदत को रोकने के लिए पर्याप्त बल प्राप्त न हो, तो किसी कसाईखाने में जा कर घृणित तथा सड़े-गले मांसपेशियों, आन्त्रों, वृक्कों तथा पशु के अन्य घिनावने अंगों को स्वयं देखिए। इससे आपमें वैराग्य उत्पन्न होगा तथा मांस भक्षण के प्रति प्रबल जुगुप्सा तथा घृणा हो जायेगी।

अमूल्य दूध, मक्खन आदि देने वाली गाय तथा बकरी को मारना जघन्य ही नहीं, वरन् नृशंस अपराध है। हे आत्म-विमोहित अज्ञानी निर्मम मानव! इन निर्दोष प्राणियों की हत्या न करो। कयामत के दिन भयंकर यन्त्रणा आपकी प्रतीक्षा कर रही है। आप अपने सारे कर्मों के लिए नैतिक दृष्टि से उत्तरदायी हैं। कर्म का नियम अचूक है। गौ-हत्या तो मातृघात के समान ही है। पुनः आपको इन निर्दोष प्राणियों की हत्या करने का क्या अधिकार है जो

आपके शरीर पोषण के लिए दूध देते हैं? यह सर्वाधिक पाशविक, अमानुषिक तथा हृदयविदारक कार्य है। गाय, बकरी तथा अन्य • पशुओं की हत्या को विधान द्वारा शीघ्र ही बन्द कर देना चाहिए। वध के लिए ले जाया जाने वाला पशु भय तथा क्रोध के कारण अपने रुधिर में विभिन्न प्रकार के विष उत्पन्न कर डालता है। शाकाहार शरीर की आहार-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से आपूर्ति करता है; अतः ये क्रूरताएँ अकारण हैं।

अब मैं कुछ शब्द जीवतियों (विटामिन) के सम्बन्ध में कहूँगा । जीवति (विटामिन) की भी आहार में आवश्यकता होती है। वे शरीर निर्माण करते हैं। यदि वे अवर्तमान या अपूर्ण होते हैं, तो शरीर विकसित नहीं हो सकता और तत्परिणाम स्वरूप सुखण्डी, प्रशीताद (स्कर्वी) जैसे हीनान्न रोग होते हैं। वे भोजन में बहुत अल्प मात्रा में वर्तमान रहते हैं। वे पोषण-रूपी अग्नि को प्रदीप्त करने वाले स्फुलिंग के समान हैं। जीवति (विटामिन) के चार महत्त्वपूर्ण भेद हैं जीवति क, जीवति ख, जीवति ग तथा जीवति घ। जीवति क दूध में होता है। जीवति ख अपरिष्कृत चावल तथा टमाटर के रस में होता है। जीवति ख का अभाव बलहारी (बेरीबेरी) रोग उत्पन्न करता है। जो परिष्कृत चावल खाते हैं, उनको यह रोग होता है। जीवति ग शाकों, फलों तथा हरी पत्तियों में पाया जाता है। पकाने तथा डिब्बाबन्दी से यह जीवति नष्ट हो जाता है। नाविक प्रशीताद (स्कर्वी) रोग से पीड़ित होते हैं; क्योंकि सुदूर के समुद्र-यात्रा-काल में उन्हें ताजे शाक तथा फल उपलब्ध नहीं हो सकते। वे अपने साथ प्रायः नींबू का रस ले जाते हैं। यह प्रशीताद (स्कर्वी) के विकास को रोकता है। जीवति घ दूध, मक्खन, अण्डे, स्नेहमीन यकृत तैल (काड लिवर आयल) आदि में वर्तमान होता है। जीवति घ के अभाव अथवा अपूर्णता से बच्चों में सुखण्डी रोग हो जाता है।

भोजन शक्ति का पुंज है। भोजन शरीर तथा मन को शक्ति प्रदान करता है। यदि आप इस शक्ति को शुद्ध संकल्प-बल से प्राप्त कर सकते हैं, यदि आपको सूर्य अथवा विश्वात्म-प्राण से सीधे शक्ति आत्मसात् करने की यौगिक प्रविधि ज्ञात है, तो आप इस शक्ति से ही शरीर का पालन कर सकते हैं और आप आहार पूर्णतया त्याग सकते हैं। योगी को कायसिद्धि मिल जाती है।

यदि अन्न पूर्णतः पाच्य है, तो इससे मलावरोध हो जायेगा। भोजन में कुछ भूसे या रेशे का अवशेष होना चाहिए जिससे मल बन सके। जब पेट में पाचन-क्रिया होती रहे, तब पानी नहीं पीना चाहिए। यह पाचक रस को पतला बना देगा तथा पाचन-क्रिया को क्षति पहुँचायेगा। भोजन के उपरान्त आप एक गिलास पानी पी सकते हैं।

संन्यासी जन भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करते हैं। उन्हें सुसन्तुलित आहार कहाँ से मिले ? उन्हें कुछ दिनों तक तिक्त भोजन ही मिलता है, कुछ अन्य दिन मिठाइयाँ ही तथा कुछ दिन खट्टी चीजें ही मिलती हैं; परन्तु वे ध्यान बल द्वारा आवश्यक शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। यह अनुपम यौगिक से परिप्लावित विधि चिकित्सकों तथा वैज्ञानिकों को मालूम नहीं है। जब कभी मन एकाग्र होता है, तब एक ईश्वरीय तरंग सारे तन्तुओं को दिव्य सुधा कर डालती है। सारे जीवकोश नव-जीवन तथा नव-स्फूर्ति प्राप्त कर लेते हैं।

उपवास योगाभ्यासियों के लिए निषिद्ध है; क्योंकि इससे दुर्बलता आती है। कभी-कभी हलका उपवास करना बहुत लाभदायक है। यह शरीर का पूर्ण संशोधन करता, पेट तथा आँतों को आराम देता तथा मूत्राम्ल (यूरिक एसिड) को निकाल देता है। योग के साधक ११ बजे भर पेट भोजन, प्रातः एक प्याला दूध तथा रात्रि को आधा सेर दूध, दो केले या दो नारंगी या दो सेब खा सकते हैं। रात्रि का भोजन बहुत हलका होना चाहिए। यदि पेट बोझिल है, तो निद्रा शीघ्र आ जायेगी। केवल दूध तथा फल का आहार योगाभ्यासियों के लिए सर्वोत्तम है।

सरल, स्वाभाविक, अनुत्तेजक, तन्तु-निर्माता, शक्तिदायक, अमादक भोजन तथा पेय मन को शान्त तथा शुद्ध रख कर योगाभ्यास में तथा जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देता है।

६. शिवानन्द का प्राणायाम

विधि : एक आसन्दी (कुरसी), प्रत्तल्प (सोफा) अथवा सुखासन्दी (आरामकुरसी) पर सुखपूर्वक बैठ जायें। जितना अधिक समय तक सुविधापूर्वक हो सके, दोनों नासापुटों से श्वास अन्दर खींचें (पूरक करें)। जितना अधिक समय तक सुविधापूर्वक रोक सकें, रोके रखें (कुम्भक करें)। श्वास को रोके रखने के समय अपने इष्टमन्त्र अथवा ॐ का जप करें। तब जितना अधिक समय तक सुविधापूर्वक हो सके, श्वास को निकालें (रेचक करें)। आपको अन्त श्वसन (पूरक), उच्छ्वसन (रेचक) तथा अवधारण (कुम्भक) के मध्य अनुपात के नियम के अनुपालन की आवश्यकता नहीं है; किन्तु अन्तःश्वसन (पूरक) तथा उच्छ्वसन (रेचक) गम्भीर तथा पूर्ण होने चाहिए।

लाभ : इस प्राणायाम के अगण्य लाभ हैं। सभी मांसपेशियाँ विश्राम पाती हैं। सभी स्नायुओं में सुमेल होता है। सारे शरीर में ताल तथा सामंजस्य स्थापित होता है। मन शान्त हो जाता है। रक्त परिसंचरण को बढ़ावा मिलता है। आपके अन्दर अवर्णनीय शान्ति तथा आनन्द का आधिपत्य स्थापित हो जाता है।

इसे आप प्रातः शय्या में लेटे रह कर कर सकते हैं। आपका मन जप तथा ध्यान आरम्भ करने के लिए सतर्क हो जायेगा। जब काम, क्रोध अथवा अन्य कुवृत्तियों के आने के कारण आप मन का सन्तुलन खोने वाले हों, उस समय आप इसे कर सकते हैं; मन महान् शक्ति से आपूरित हो जायेगा जो कुवृत्तियों को आपको क्षुब्ध करने से रोकेगी। आप अपना अध्ययन आरम्भ करने से ठीक पूर्व इसे कर सकते हैं। इससे आपका मन सहज ही संकेन्द्रित हो जायेगा और जो कुछ भी अध्ययन करेंगे, वह आपके मन में अमिट रूप से अंकित हो जायेगा। आप इसे अपने कार्यालय कार्यकाल में कर सकते हैं। आपको प्रत्येक बार नवीन शक्ति प्राप्त होगी। आप कभी नहीं थकेंगे। आप कार्यालय से घर वापस आने पर इस प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं और आप नवीन शक्ति से पुनः प्रभृत हो जायेंगे।

इससे सर्वाधिक लाभ यह है कि यदि आपने एक बार इसे करना आरम्भ कर दिया, तो आप प्रायः इसे करेंगे। आपके मन को इस 'अति-सुखपूर्वक प्राणायाम' के न करने का कभी भी बहाना नहीं मिल सकेगा जिसमें प्राणायाम के 'नियम विनियम' के बिना उसके सभी लाभ हैं। इसे अभी से अवश्यमेव करें।

७. कुण्डलिनी - प्राणायाम

इस प्राणायाम में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के मध्य अनुपात की अपेक्षा भावना का अधिक महत्त्व है।

पूर्व अथवा उत्तर की दिशा की ओर मुख करके पद्म अथवा सिद्ध आसन में बैठ जायें।

सद्गुरु के पादपद्मों में मानसिक दण्डवत् प्रणाम तथा ईश और गुरु-स्तोत्रों का पाठ करने के अनन्तर इस प्राणायाम को करें जो आपको कुण्डलिनी के जागरण की दिशा की ओर सहज ही ले जायेगा। गम्भीर श्वास लें। श्वास लेते समय कोई आवाज न हो।

जब आप श्वास लें, तो ऐसी भावना करें कि मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग गयी है और एक चक्र से दूसरे चक्र की ओर ऊपर जा रही है। पूरक की समाप्ति पर भावना करें कि कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँच गयी है। एक चक्र के पश्चात् दूसरे चक्र का मानस-दर्शन जितना अधिक सजीव होगा, उतनी ही साधना में आपकी आशु प्रगति होगी।

कुछ समय तक श्वास को रोके रखें। प्रणव अथवा अपने इष्ट-मन्त्र का जप करें। सहस्रार चक्र पर ध्यान केन्द्रित करें। अनुभव करें कि माँ कुण्डलिनी की कृपा से आपकी आत्मा को आवृत करने वाला अज्ञानान्धकार विदूरित हो गया है। भावना करें कि आपकी सम्पूर्ण सत्ता ज्योति, शक्ति और प्रज्ञा से व्याप्त है।

अब धीरे-धीरे श्वास निकालें और जब आप प्रश्वास लें, तो यह भावना करें कि कुण्डलिनी शक्ति सहसार से धीरे-धीरे एक चक्र से दूसरे चक्र को होती हुई मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण कर रही है।

अब इस क्रिया को पुनः आरम्भ करें।

इस अद्भुत प्राणायाम का यथोचित रूप से गुणगान करना असम्भव है। यह अत्यन्त शीघ्र पूर्णता प्राप्त करने के लिए 'जादू की छड़ी' है। कुछ दिनों का अभ्यास ही आपको इसकी विलक्षण महिमा का विश्वास दिला देगा। आज से ही, इस क्षण से ही इसे आरम्भ कर दीजिए।

भगवान् आपको सुख, आनन्द तथा अमरत्व प्रदान करें।

८. प्रश्नोत्तर

प्रश्न: क्या यह कहना ठीक है कि राजयोग के अभ्यास में प्राणायाम आवश्यक नहीं है?

उत्तर : नहीं, प्राणायाम राजयोग के आठ अंगों में से एक है।

प्रश्न: क्या गुरु की सहायता के बिना प्राणायाम का अभ्यास खतरनाक है ?

उत्तर: लोग व्यर्थ ही आशंकित होते हैं। आप गुरु की सहायता के बिना ही साधारण प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। यदि आप कुम्भक का अभ्यास बहुत देर तक अथवा प्राण अपान का योग करना चाहते हैं, तो गुरु आवश्यक है। यदि आपको गुरु न मिले, तो साक्षात्कार प्राप्त योगियों की लिखी पुस्तकें आपका पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं; परन्तु अपने निकट गुरु का होना अधिक अच्छा है। आप गुरु से पाठ सीख कर घर पर भी अभ्यास कर सकते हैं। आप नियमित पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। आप आधे से एक या दो मिनट तक बिना किसी कठिनाई अथवा खतरे के श्वास को रोक सकते हैं। यदि आपको साक्षात्कार प्राप्त योगी न मिल सकें, तो योग के किसी उन्नत साधक के पास जाना चाहिए। वे भी आपकी सहायता कर सकते हैं।

प्रश्न: क्या केवल प्राणायाम के अभ्यास से ही प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग्रत हो सकती है?

उत्तर : हाँ। आसन, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, जप, ध्यान, सबल तथा शुद्ध विश्लेषणात्मिका बुद्धि, गुरु की कृपा, भक्ति – इन सबसे भी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

प्रश्न : खेचरी मुद्रा के अभ्यास से क्या परिणाम निकलते हैं?

उत्तर : इससे साधक श्वास को रोक सकता है। वह गम्भीर धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कर सकता है। वह भूख तथा प्यास से मुक्त होगा। वह सुगमतापूर्वक श्वास को एक नासिका पुट से दूसरे नासिका-पुट में बदल सकता है। वह केवल कुम्भक का अभ्यास भी बड़ी सुगमतापूर्वक कर सकता है।

प्रश्न : प्राण तथा अपान के संयोग तथा सुषुम्ना से प्राण की गति के लक्षण क्या हैं?

उत्तर : जब प्राण तथा अपान का संयोग होता है, तो संयुक्त बाण अपान सुषुम्ना से हो कर गुजरते हैं तथा साधक जगत् के लिए तवत् हो जाता है अर्थात् वह अपने देह-चैतन्य, परिस्थितियाँ तथा नात् के ज्ञान को खो देता है; परन्तु उसमें पूर्ण चेतना रहती है। वह दिव्य नन्द, भाव-समाधि तथा समाधि की निम्नतर अवस्थाओं का अनुभव करता है। जब प्राण सुषुम्ना में ऊपर चलता है, तो विभिन्न चक्रों में साधक विभिन्न अनुभवों को प्राप्त करता है। ये वाणीगम्य नहीं है, वरन अनुभवगम्य हैं। प्राण के सहस्रार में पहुँचने पर योगी समाधि प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न: क्या महाबन्ध के समय भी प्राणायाम के अभ्यास के लिए १४. २ का अनुपात आवश्यक है ?

उत्तर: हाँ, महाबन्ध में पूरक, कुम्भक तथा रेचक का अनुपात १.४.२ होता है।

प्रश्न: यदि साधक बन्धत्रय-प्राणायाम का अभ्यास करता है और १० मात्रा पूरक, ४० मात्रा कुम्भक तथा २०

मात्रा रेचक करता है, तो शुद्ध कुम्भक कितनी देर तक होना चाहिए तथा उड्डियान के साथ कितनी देर तक बाह्य कुम्भक होना चाहिए?

उत्तर : बन्धत्रय में साधक को बाह्य कुम्भक की आवश्यकता नहीं है। उन्नत साधक पाँच-छह सेकेंड तक कर सकते हैं। बन्धत्रय में १.४.२ के अनुपात से जो कुम्भक होता है, वही प्राण-अपान के योग में पर्याप्त है।

प्रश्न : ताड़न-क्रिया तथा महावेध में क्या अन्तर है ?

उत्तर : ताड़न-क्रिया में साधक किसी भी तरह श्वास ले सकता है; परन्तु महावेध-प्राणायाम में बन्धत्रय में वर्णित प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न: क्या भगवद्-दर्शन के लिए प्राणायाम आवश्यक है?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : जब प्राण को दशवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में लाया जाये, तो क्या साधक कुछ पिन की चुभन-सा अनुभव करेगा ?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : ऊर्ध्वरेता-प्राणायाम क्या है?

उत्तर : सुखपूर्वक अथवा लोम-विलोम प्राणायाम करते समय ऐसा अनुभव करना चाहिए कि वीर्य ओजस् के रूप में सहस्रार की ओर प्रवाहित हो रहा है। यही ऊर्ध्वरेता-प्राणायाम है।

प्रश्न : यदि प्राणायाम के अभ्यास-काल में १:४२ का अनुपात रखने का प्रयास करता हूँ, तो मैं इष्टदेवता पर

ध्यान नहीं कर पाता। यदि ध्यान करने का प्रयास करता हूँ, तो १ ४ २ का अनुपात नहीं रख पाता। कृपया बतलाइए कि क्या करूँ ?

उत्तर : दो या तीन महीने तक अनुपात रखने का प्रयास कीजिए। आदत दृढ़ होने पर आप स्वतः ही अनुपात रखने लगेंगे। तब आप इष्ट-देवता पर ध्यान कर सकते हैं। मन एक बार में एक ही कार्य कर सकता है।

प्रश्न: बायें नासिका -पुट से श्वास लेना तथा दाहिने नासिका -पुट से छोड़ना, पुनः इसके विपरीत करना—इसका क्या उद्देश्य है ?

उत्तर : इससे श्वास तालबद्ध हो जाती है, स्नायु स्थिर हो जाती हैं तथा मन शान्त हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी चलने लगती है, जो ध्यान के लिए बहुत ही लाभदायक है। इससे शरीर में पूर्ण एकरसता रहती है। पाँचों कोश तालबद्ध हो कर स्पन्दित होने लगते हैं।

प्रश्न: क्या प्राणायाम से कुछ खतरा भी है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं?

उत्तर : यदि आप सावधान हैं तथा यदि आप सहज बुद्धि का प्रयोग करते हैं, तो प्राणायाम, आसन इत्यादि के अभ्यास में कोई खतरा नहीं है। लोग व्यर्थ ही सशंकित रहते हैं। यदि आप असावधान हैं, तो हर काम में खतरा है।

प्रश्न : मैं अपनी साधना में नियमित हूँ । यद्यपि पूर्ववत् बारम्बार नहीं, पर झटके अभी भी लगते हैं। बतलाइए, क्या करूँ ?

उत्तर : प्राणायाम तथा ध्यान के अभ्यास से शरीर के जीवकोश तथा ऊतक स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। उनमें नव-प्राण का संचार होता है। नये प्राण-प्रवाह उत्पन्न होते हैं। इससे प्रारम्भ में झटका लगता है। वे शीघ्र ही दूर हो जायेंगे।

प्रश्न: क्या आप कृपया अपान वायु पर प्रकाश डालेंगे। हम श्वास लेते हैं जिससे रुधिर-कोशिकाओं तथा प्लाविकाओं द्वारा ओषजन आत्मसात् होता है; परन्तु इस ओषजन से अपान का निर्माण कैसे होता है? यह किस भाग में स्थित है ? इसका स्वरूप कैसा है ? कहाँ तथा कैसे प्राण एवं अपान संयुक्त होते हैं? कृपया इससे प्रभावित होने वाले अंगों का उल्लेख करते हुए वैज्ञानिक ढंग से इन पर प्रकाश डालें।

उत्तर : अपान की उत्पत्ति ओषजन से नहीं होती। अपान शक्ति है। अपान उदर के निचले भाग में मूलाधार में, बृहदान्त्र, मलाशय तथा गुदा में स्थित है। इसका स्वभाव है नीचे की ओर संचरित होना। इसका कार्य मल, मूत्र तथा वायु का निष्कासन करना। केवल-कुम्भक, कुम्भक, मूल-बन्ध, जालन्धर-बन्ध तथा उड्डियान बन्ध के द्वारा प्राण तथा अपान का संयोग होता है। वे नाभि के निकट मणिपूरक चक्र में संयुक्त होते हैं।

प्रश्न : नाड़ी-शुद्धि किस प्रकार की जाती है ?

उत्तर: नाड़ी-शुद्धि या तो समानु द्वारा अथवा निर्माणु द्वारा होती है। इसका अर्थ है या तो बीज के साथ होता है अथवा बीज के बिना ही। हुए वह पिछली विधि के अनुसार योगी पद्मासन या सिद्धासन में बैठ कर गुरु की प्रार्थना करता है तथा उस पर ध्यान करता है। 'यं' पर ध्यान करते इडा द्वारा १६ बार उस बीज का जप

करता है, ६४ बार जप करते हुए कुम्भक तथा ३२ बार जप करते हुए सूर्य नाड़ी द्वारा रेचक करता है। मणिपूरक से अग्नि उठती है तथा पृथ्वी से युक्त हो जाती है। तब सूर्य नाही से अग्नि बीज 'र' के साथ १६ बार जप करते हुए पूरक, ६४ बार जप करते हुए कुम्भक तथा ३२ बार जप करते हुए चन्द्र-नाड़ी द्वारा रेचक करते हैं। तब वह नासिकाग्र दृष्टि रखते हुए चन्द्रमा की कान्ति पर ध्यान करता है। तथा 'ठ' बीज का १६ बार जप करते हुए इडा में श्वास लेता है। 'व' बीज का ६४ बार जप करते हुए कुम्भक करता है। वह इस प्रकार भावना करता है। कि वह अमृत से आप्लावित हो रहा है तथा नाड़ियाँ प्रक्षालित हो गयी हैं। 'ल' का ३२ बार जप करते हुए वह पिंगला द्वारा श्वास को बाहर छोड़ता है। तथा इस प्रकार बल-प्राप्ति की भावना करता है।

यदि आप सीढ़ी से नीचे उतरते समय असावधान हैं, तो गिर कर हड्डी तोड़ लेंगे। यदि आप नगर के भीड़ वाले पथ पर असावधान चलेंगे, तो मोटर कार से कुचल जायेंगे। यदि रेलवे स्टेशन पर टिकट खरीदते समय आप असावधान हैं, तो अपना बटुआ गँवा बैठेंगे। यदि आप औषध तैयार करने में असावधान हैं, तो गलत औषध अथवा विष अथवा अधिक परिमाण में औषध दे कर आप रोगी को मार डालेंगे। इसी प्रकार यदि आप प्राणायाम या अन्य योगाभ्यासों को करते हैं, तो आपको अपने भोजन के विषय में सावधान रहना चाहिए। आपको अति भोजन से बचना चाहिए। आपको हलका, सुपाच्य तथा पौष्टिक आहार करना चाहिए। श्वास रोकने में आपको अपनी शक्ति के बाहर नहीं जाना चाहिए। एक या दो महीने तक आपको पहले रेचक तथा पूरक का ही अभ्यास करना चाहिए। आपको धीरे-धीरे १ : ४: २ से बढ़ा कर १६ : ६४ : ३२ तक अनुपात ले जाना चाहिए। आपको बहुत धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिए। यदि इन नियमों का पालन किया जाये, तो प्राणायाम तथा अन्य योग-क्रियाओं के अभ्यास में जरा भी खतरा नहीं है।